मार्च : 1979
मूल्य : 50 पैसे

PUBLICATIONS DIVI
LIBRARY

कुरुक्षेत्र

संपादकीय

शराबी की मां

बात कुछ पुरानी है, जम्मू-कश्मीर के महाराजा हरीसिंह के जमाने की। जम्मू के एक कालेज के प्रांगण में तत्कालीन प्रख्यात मुस्लिम फिल्म निर्माता श्री आगा हश्र कश्मीरी पधारे। उनके आगमन का समाचार सुनते ही कालेज के छात्र स्वागत-सत्कार के लिए उनक आसपास उमड़ पड़े। बड़ा आल्हादकारी और उल्लासपूर्ण वातावरण था। छात्रों ने उनका हार्दिक अभिनन्दन किया और उन्होंने भी छात्रों को कुछ नसीहत दी।

उनकी पहली नसीहत थी कि जीवन में कभी शराब न पीना। अपने शराबी जीवन का रोचक संस्मरण बताते हुए उन्होंने कहा कि मैं इतनी शराब पीता था कि सुबह से रात तक शराब के नशे में चूर रहता एक बार अपने घर से निकल कर ज्योंही मैं एक फर्लांग दूर पहुंचा तो देखा कि एक मां अपने युवक पुत्र से भला-बुरा कह रही थी कि तूने शराब पी-पी कर मेरे घर को बरबाद कर दिया, तेरे बाप कितने भले और साधु प्रकृति के थे और तू कितना निर्लज्ज बेहा-बेशर्म है। आज लोग मुझे शराबी की मां कहते फिरते हैं। अच्छा होता कि तू पैदा ही न होता या पैदा होते ही मर जाता तो मुझे कम से कम ये शर्मनाक शब्द तो न सुनने पड़ते।

उस 'मां' के शब्दों ने श्री आगा हश्र के दिल पर गहरी चोट की। उन्होंने सोचा कि अगर उनकी मां जिन्दा होती तो वह भी उनसे ऐसे ही शब्द कहती: बस, उसी समय उन्होंने भविष्य में कभी भी शराब न पीने का दृढ़ वृत लिया।

घर आकर उन्होंने शराब की बोतलें और पीने-पाने के सभी बर्तन-भांडे तोड़ डाले, पर शराब की लत को एक दम छोड़ देना भी तो खतरनाक होता है और हुआ भी यही कि वे बीमार पड़ गए। डाक्टरों ने राय दी कि शराब की लत को एक दम न छोड़ो, धीरे धीरे छोड़ोगे तो शरीर पर बुरा असर न पड़ेगा। परन्तु डाक्टरों की राय भी उन्होंने नहीं मानी और फिर भविष्य में कभी भी शराब को छुआ तक नहीं।

अपने शराबी जीवन का उन्होंने एक अनुभव यह भी बताया कि उस समय शराब के नशे में ही वे अपनी रचनाओं का सर्जन कर पाते थे और नशा उतरने पर तो वे अपने दिमाग की हालत को बिल्कुल निष्क्रिय ही पाते। परन्तु जब उन्होंने शराब की लत छोड़ दी तो उनका दिमाग ठीक स्थिति में आ गया और वे अधिक रोचक तथा स्पष्ट रचनाएं करने में समर्थ हो गए।

उनकी दूसरी नसीहत एक प्रश्न के उत्तर के रूप में थी। प्रश्न था कि क्या भारतीय संस्कृति, जिसका हमारे लोग इतना गुणगान करते हैं, सचमुच ही दुनिया में सर्वश्रेष्ठ है और क्या रामायण और महाभारत की कथाओं में कुछ ऐतिहासिक तथ्य हैं अथवा वे कोरी कल्पनाएं हैं? छात्रों के प्रश्न को सुनकर वे "थोड़े से गम्भीर हुए और फिर बोले—रामायण और महाभारत भारतीय संस्कृति की जान ह। इन रचनाओं में ऐतिहासिकता हो या न हो, कोरी कल्पना ही वे क्यों न हों पर क्या दुनिया में ऐसी रचनाएं किसी और ने रची हैं? उत्तर नकारात्मक ही हो सकता है।

परन्तु खेद है कि इन रचनाओं की विषय वस्तु से प्रेरणा लेकर हमारे सामाजिक जीवन में जिन मूल्यों की स्थापना की गई उनसे अब हम भटकते जा रहे हैं। हमारे गांवों के शुद्ध पवित्र जीवन में भी कालुष्य का दानव घुस गया है। जहां पहले शराब का कोई नाम तक न जानता था वहां अब शराब की नालियां बह रही हैं। मां-बाप का मान-सम्मान नहीं रहा। आपसी मेल-मिलाप और प्रेम-भाव की तो बात ही क्या, भाई-भाई का जानी दुश्मन है। जाति-बिरादरी के आपसी लड़ाई-झगड़ों से वातावरण विषाक्त बन गया है। गांवों में भी असुरक्षा की भावना है। न अब वहां पहले जैसे स्वस्थ-सुन्दर और छरहरे युवक दिखाई देते हैं और न अब वहां पहले जैसा दुध-घी का खान-पान सुलभ है। सुलभ है तो चायपान और धूम्रपान।

[शेष पृष्ठ 32 पर]

मज़दूर मंज़िल

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र, फोटो आदि भेजिए। भाषा सरल हो और रचना का आकार 'कुरुक्षेत्र' के दो-ढाई पृष्ठ से अधिक न हो।

●

अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है।

●

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने, पता बदलने या अंक न मिलने की शिकायत, बिजनेस मैनेजर, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

●

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार : सम्पादक कुरुक्षेत्र (हिन्दी), कृषि और सिंचाई मन्त्रालय, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें।

●

दूरभाष : 382406

एक प्रति 50 पैसे — वार्षिक चंदा 5.00 रु०

सम्पादक : महेन्द्र पाल सिंह

उपसम्पादक : कु० शशि बाबला
मोहन चन्द्र मण्टन

आवरण पृष्ठ : जीवन अडालजा

कुरुक्षेत्र

वर्ष 24 चैत्र 1900-1901 अंक 5

इस अंक में : **पृष्ठ संख्या**

गावों में पूर्ण रोजगार का कार्यक्रम 2
बेनी कृष्ण शर्मा

गरीबी दूर करने की योजनाओं में गरीबों का सहभाग जरूरी 4
जी० सी० एल० जुनेजा और पी० सी० माथुर

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि की भूमिका 8
जे० एस० गुप्ता

काम के बदले अनाज : कुछ अनुभूतियां 10
दुर्गा शंकर त्रिवेदी

अलीगढ़ जनपद में कृषि रक्षा उपायों का चमत्कारिक प्रभाव 12
हुकुम सिंह देश राजन

राजभाषाओं का वर्ष 13
श्री जगन्नाथ

ग्रामीण स्वास्थ्य योजना 15
पी० आर० कृष्णमूर्ति

ग्राम विकास गतिविधियों का परिवार नियोजन कार्यक्रम के साथ समन्वय 17
जी० वी० के० राव

आम का गुच्छा रोग 18
राज मणि पाण्डेय और कौशल कुमार मिश्र

उत्तर प्रदेश में कालीन उद्योग के बढ़ते चरण 21
रवीन्द्र कुमार सिंह

पहाड़ों की हरीतिमा को बचाओ 23
सतीश कुमार जैन

राजस्थान पूर्ण नशाबन्दी लागू करने की ओर अग्रसर 25
के० पी० अरोरा

बच्चों में प्रोटीन कैलौरी कुपोषण 27
बटुकेश्वर दत्त सिंह 'बटुक'

छोटे आदमी : बड़ी बातें (कहानी) 30
श्री राम शर्मा 'राम'

पहला सुख निरोगी काया 33

साहित्य समीक्षा 35

गांवों में पूर्ण रोजगार का कार्यक्रम

श्री बेनी कृष्ण शर्मा, संयुक्त सचिव, ग्राम विकास विभाग,

कृषि और सिंचाई मंत्रालय, नई दिल्ली ।

वर्तमान पंचवर्षीय योजना का मुख्य कार्यक्रम गांवों का समन्वित विकास करना है। निर्दिष्ट लक्ष्य है बेकारी की समस्या को सुलझाना और ग्रामीण जनसंख्या के उस 40 प्रतिशत से अधिक को ऊपर उठाना जो गरीबी के बोझ से दबे पड़े हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन सभी विकास योजनाओं को सहायता दी जाएगी जो ग्रामीण क्षेत्रों में सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं। अनुमान है कि अगले 10 वर्षों में गांवों से बेकारी लगभग दूर हो जायेगी और निर्धन वर्ग गरीबी की रेखा को पार कर लेगा।

लघु किसान विकास योजना, सूखाग्रस्त क्षेत्र योजना, सिंचित क्षेत्र विकास योजना आदि के अन्तर्गत 2 000 विकास खण्डों को सघन रूप से कार्य करने के लिए चुना जा चुका है । इनके अतिरिक्त, प्रति वर्ष 300 अन्य विकास खण्डों को इसी प्रकार सघन कार्य के लिए चुना जाएगा। इस प्रकार छठी पंचवर्षीय योजना के अन्त तक 3500 विकास खण्डों में विस्तृत आधार पर समन्वित विकास कार्य होने लगेगा। देश में कुल विकास खण्डों की संख्या 5 005 है ।

इस पूरी योजना का उद्देश्य ग्रामीण लोगों को रोजगार देना है। यहां यह स्पष्ट करना ठीक होगा कि अधिक संख्या गांवों में उन लोगों की है जिनके पास पूरे समय का रोजगार नहीं है। उनके साधन, जिनमें खेती भी शामिल है, ऐसे हैं जिनमें पूरे समय का इस्तेमाल नहीं हो पाता। यही कारण है कि अधिकतर लोग निर्धनता के शिकार हैं। इस समस्या का समाधान बहुत कठिन है। इसके लिए भारी धनराशि की आवश्यकता है। साथ-साथ आवश्यकता है ऐसे छोटे-छोटे कार्यक्रमों की जिन्हें गरीबी से दबे परिवार आसानी से अपना सकें और अपनी जीविका चला सकें। ये योजनाएं इस प्रकार की हों कि जिनमें थोड़ी सी पूंजी लगाकर मामूली तकनीकी ज्ञान के सहारे जल्दी से जल्दी आमदनी शुरू हो सके। आय इतनी होनी चाहिए कि परिवार का खर्च आसानी से चल सके और उसकी अन्य आवश्यकताएं भी पूरी हो सकें। दोनों समय सबको पूरा भोजन मिल सके, पहनने के वस्त्रों का प्रबन्ध हो जाए, कम से कम बच्चों को दूध प्राप्त हो सके, समय से उन्हें शिक्षा के लिए भेजा जा सके, आवश्यकता पड़ने पर चिकित्सा आदि का व्यय भी वहन करने की क्षमता हो। इतनी सामर्थ्य के बाद ही यह कहा जा सकेगा कि परिवार गरीबी की रेखा को लांघ चुका है।

हमारे ग्रामीण भाई अभी तक मुख्यत: खेती पर निर्भर हैं। कुछ के पास अपनी भूमि है, कुछ दूसरों की भूमि जोत कर पेट पालते हैं। इनके अलावा, कुछ ऐसे भी हैं जो खेती में मजदूरी कर अपना गुजारा करते हैं। कुछ लोग छोटी-छोटी दस्तकारी व धन्धों में लगे हैं। उन लोगों की संख्या बहुत कम है जिनके पास जीविका कमाने के लिए पर्याप्त भूमि है। इसलिए मुख्य नीति खेती में अधिकाधिक पैदावार की होनी चाहिए । साथ-साथ उन साधनों को भी उपलब्ध कराना चाहिए जिनसे कृषि का सीधा सम्बन्ध है और जिनके द्वारा किसान की आय में वृद्धि की जा सकती है। इन कार्यों में पशुपालन, मुर्गीपालन, भेड़ व बकरी पालन, तरकारी व फलोत्पादन, मीनपालन, रेशम के कीड़े पालना आदि हैं । प्रत्येक परिवार का सर्वेक्षण कर पहले यह पता लगाना होगा कि इस समय उनकी जीविका का साधन क्या है और उन्हें कितनी आय प्राप्त होती है। वे क्या और काम कर सकते हैं और उनकी जनशक्ति कितनी है। इसी के आधार पर अतिरिक्त योजनाओं का कार्यक्रम बनाया जा सकेगा।

दूसरी श्रेणी में वे लोग आते हैं जिनके पास भूमि नहीं है । उन्हें छोटे-छोटे ग्रामीण-धन्धों, कलाओं व व्यवसायों में लगाना होगा। इनमें लोहारी, बढ़ईगिरी, चर्मकारी, मिट्टी के बर्तन बनाना, हाथ-करघे का काम, बान व रस्सी बनाना, चटाई बनाना, बांस व बेंत की वस्तुएं शामिल हैं। धान की कुटाई, तेल घानी, खांडसारी, अचार, पापड़ आदि तैयार करना और सिलाई, कताई, बुनाई, कशीदा-कारी आदि भी ऐसे काम हैं जिनमें गांव वालों को आसानी से लगाया जा सकता है। इसके लिए पहले प्रशिक्षण और उसके बाद काम में आने वाले यंत्र, कच्चा माल व कारोबारी पूंजी की आवश्यकता होगी। इन सबसे महत्वपूर्ण है बिक्री की ऐसी व्यवस्था, जिसके द्वारा उत्पादनकर्त्ता को अपने सामान का उचित मूल्य मिल जाए और तैयार शुदा माल रुकने भी न पाए।

तीसरी श्रेणी में वे परिवार आएंगे, जो वे सब सुविधाएं जुटा सकें जिनकी गांव वालों को आवश्यकता है। इनमें कपड़े की दुकान, परचून की दुकान

हलवाई की दुकान, चाय की दुकान, कपड़े सिलाई की दुकान, बिजली के सामान व रेडियो आदि की मरम्मत की दुकान, जूते आदि की मरम्मत आदि के व्यवसाय शामिल हैं। कुछ लोग बैलगाड़ी, ऊंटगाड़ी, घोड़ागाड़ी, रिक्शा, मोटर-साइकिल रिक्शा व मोटर लारी आदि चलाकर गांव वालों को और उनके सामान को एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाने की सुविधा जुटा सकते हैं और उससे अपना भरण-पोषण कर सकते हैं।

इन कार्यक्रमों के आधार पर ग्राम-वासियों को, आर्थिक दशा सुधारने के लिए आर्थिक सहायता देने का कार्यक्रम बनाया गया है। इस सहायता का एक चौथाई या एक तिहाई सरकार उपदान के रूप में देती है और शेष बैंकों या सहकारी संस्थाओं से ऋण के रूप में लेना होता है। लघु किसान को उपदान के रूप में दी जाने वाली धनराशि कुल लागत का एक चौथाई और सीमान्त किसान, कृषि मजदूर व कलाकार आदि को एक तिहाई होती है। इन विभिन्न कार्यों को कुशलतापूर्वक करने के लिए सर्वप्रथम प्रशिक्षण की आवश्यकता है जिसका पूरा व्यय सरकार वहन करेगी। जो व्यक्ति उद्योग-धन्धे चलाना चाहते हैं उनको मशीन व औजार खरीदने के लिए कारोबारी पूंजी प्राप्त करने आदि के लिए उपदान मिलेगा। सब मिलाकर एक परिवार को 1,500 रुपये तक उपदान के रूप में उपलब्ध होगा। बैंकों व सहकारी संस्थाओं से ऋण दिलाने के लिए सरकारी वर्ग पूरी सहायता देगा। कुछ योजनाएं ऐसी भी होंगी जो सामूहिक आधार पर या सहकारी समितियों आदि द्वारा कार्यान्वित की जाएंगी। उस स्थिति में उपदान की मात्रा बढ़कर 50 प्रतिशत हो जायेगी।

ये कार्य बहुत जटिल नहीं हैं। इनके द्वारा लोगों को आमदनी भी आसानी से मिल सकती है। किन्तु प्रत्येक निर्धन परिवार को इन कार्यों के लिए प्रेरित करना व सक्षम बनाना और जरूरी साधनों को जुटाना एक बहुत बड़ी साधना होगी। इसमें पैसे से अधिक ऐसे लोगों की आवश्यकता है जो ईमानदारी से और पूरी लगन से इन कार्यों में जुट सकें, प्रत्येक अड़चन और कठिनाई से निपटने के लिए सक्षम हों, असहाय लोगों की दयनीय दशा का अनुचित लाभ न उठाएं बल्कि उनकी सच्चे मन से मदद करें व सहायता पहुचाएं।

यह कार्य बहुत बड़ा है और चुनौती-पूर्ण भी। वर्तमान प्रशासनिक प्रणाली ऐसी है कि जिसमें लक्ष्य पर पहुंचने में देरी होती ही है। यह प्रणाली एक शताब्दी से भी पूर्व अंग्रेजों ने बनाई थी, जिसका मुख्य आधार अविश्वास था। उस समय विकास कार्य तो नाममात्र को होते थे, मुख्य कार्य प्रजा पर नियंत्रण रखना ही था। इस समय हमारा मुख्य लक्ष्य विकास की ओर तीव्र गति से बढ़ना है। अतः प्रशासनिक प्रणाली में इस प्रकार का परिवर्तन करना होगा कि काम की गति धीमी न हो। इसके लिए हमें विश्वास को आधार बनाना होगा और जिस व्यक्ति पर लक्ष्य पूरा करने का दायित्व है उस पर पूरा भरोसा करना होगा। दायित्व के आधार पर उसे प्रशासनिक अधिकार भी देने होंगे। इस महत्वपूर्ण प्रशासनिक सुधार के लिए पूरा राजनैतिक बल दिया जाना चाहिए। अनुभव बताता है कि जिन लोगों ने उत्साहपूर्वक कार्य किया और यदा कदा उसके बेग में अनजाने गलती कर बैठे उन्हें यातना भुगतनी पड़ी। इसके विपरीत जो हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे और किसी काम में उन्होंने विशेष रुचि या उत्साह नहीं दिखाया वे किसी झमेले में नहीं पड़े। उत्साहवर्द्धक परिणाम प्राप्त करने के लिये इस व्यवस्था में आवश्यक संशोधन अनिवार्य होगा। ✱

अतीत के प्रति

रघुनाथसिंह

हे शाश्वत अतीत!
मैंने तेरे शांत आगमन का अपने रक्त में अनुभव किया है
कोलाहलपूर्ण दिवस के मध्य मैंने तुम्हारी शांत मुद्रा को देखा है
हमारे भाग्य की अदृश्य रेखाओं में
हमारे पिता की अधूरी कथाएं
लिखने के लिए तुम्हारा आगमन हुआ है
तुम नवीन विम्बों को स्वरूप देने के लिए विस्मृत काल
को फिर जीवन देते हो।

सूर का श्रद्धासुमन

हे विश्व सखा सूर,
क्या नहीं तू कोटि सूर सम सूर है।
क्या नहीं तू कोटि नयनों का नूर है।
क्या नहीं तू विश्व-साहित्य का कोहेनूर है।
क्या नहीं तू विश्व-प्रेम का "जाम" भरपूर है।

रघुनाथ सिंह
प्रधान संपादक
राज्य सभा सचिवालय, संसदीय सौध,
नई दिल्ली-110001

गरीबी दूर करने की योजनाओं में गरीबों का सहभाग जरूरी

जी. सी. एल. जुनेजा और पी. सी. माथुर

प्रस्तुत लेख में लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी के विद्वान् लेखकों ने इस बात के महत्व पर जोर दिया है कि गरीबी दूर करने की योजनाओं में गरीबों को भी शामिल किया जाए। इन योजनाओं में अनेक एजेंसियां काम करती हैं और उन सब को समन्वित रूप से काम करना है। अतः खण्ड स्तर पर योजनाएं तैयार करना व समेकित ग्राम विकास पर जोर दिया जाना चाहिए।

हमारे देश में ग्राम विकास के इतिहास में बड़े उतार-चढ़ाव आए हैं। आजादी से पहले भी गावों में जीवन की परिस्थितियों को सुधारने और खेती की उपज बढ़ाने की कुछ कोशिशें की जाती रहीं। 1904 में यानी आज से 75 साल पहले भी इंडियन कोआपरेटिव सोसायटी एक्ट पारित किया गया था, यद्यपि इस के लागू होने में सफलताएं बहुत ही कम मिलीं यानी सन् 1954 तक कुल कृषि ऋण का 3 प्रतिशत इसके अन्तर्गत दिया गया। पंजाब में चकबन्दी शुरू की गई और इसके बाद दूसरे राज्यों ने भी इस पर अमल किया। ग्राम विकास के लिए तब कई सम्मिलित प्रयास किए गए, जबकि 1937 में विभिन्न राज्यों में लोकप्रिय सरकारें कायम हुई थीं। परन्तु इन सरकारों ने द्वितीय विश्वयुद्ध के शुरू होते ही त्यागपत्र दे दिए और इस प्रकार ये प्रयत्न भी बीच में ही लटके रह गए। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि ग्राम विकास की दिशा में किए गए प्रयत्न न तो बड़े पैमाने पर ही किए गए और न उनका स्थायी प्रभाव ही रहा।

स्वातंत्र्योतर विकास

स्वतन्त्रता के बाद, पहला कदम 'अधिक अन्न उगाओ' आन्दोलन के रूप में उठाया गया क्योंकि लड़ाई के बाद देश में अनाज की भारी कमी रही और उसे पूरा करना लाज़मी था। 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम ने एक जन-आन्दोलन का रूप धारण किया और इस के बाद त्रिस्तरीय पंचायती राज संगठन की स्थापना की गई। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य सामुदायिक प्रयत्नों को बढ़ावा देना था ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक तथा सामाजिक परिवर्तन लाया जा सके। अब यह कार्यक्रम लगभग पूरे देश में बढ़ रहा है। इसमें एक प्रशासनिक बुनियादी ढांचा तैयार हुआ जिसे ग्राम विकास के कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है परन्तु इनका गांव के गरीबों की स्थितियों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि ये योजनाएं जब चालू की गई थीं तो आम धारणा यही थी—गांव एक समुदाय है और वहां के सभी वर्गों के हित समान हैं। यह बात शीघ्र ही मिथ्या सिद्ध हो गई और यह पता लगा कि इन से केवल सशक्त वर्ग ही फायदा उठाता है। पंचायती राज भी एक ऐसा ही कदम था जिसका उद्देश्य लोगों को अपने मामलों में शरीक करना और हिस्सा लिवाना था। इसमें भी केवल शक्तिशाली वर्गों ने ही फायदा उठाया। ये शक्तिशाली वर्ग सामाजिक, आर्थिक अथवा राजनीतिक रूप से शक्तिशाली थे।

ग्राम-विकास के इतिहास में दूसरा उल्लेखनीय कार्यक्रम था—सघन कृषि-विकास कार्यक्रम। यह कार्यक्रम लगभग 1960 में चालू किया गया था। पहले इस का श्री-गणेश हुआ कुछ चुने हुए जिलों में और तब अधिकाधिक जिलों के कुछ खण्डों में।

इस कार्यक्रम का प्रमुख लक्ष्य था खेती की उपज बढ़ाना। परन्तु यह कार्यक्रम केवल वहीं लागू किया गया जहां उपज बढ़ाने की परिस्थितियां विशेष रूप से अनुकूल थीं और उन किसानों ने इस का लाभ उठाया जो कि खेती के सुधरे तौर-तरीके अपना सकने योग्य थे। 1965 में अधिक उपज देने वाले बीजों के अपनाए जाने की नीति से इस कार्यक्रम में जान पड़ गई और इसका 1965 में परिणाम हुआ 'हरित क्रांति'। उसी साल कृषि मूल्य आयोग की स्थापना की गई। तभी समर्थन मूल्यों की घोषणा और कृषि के सुधरे वैज्ञानिक तौर-तरीकों के अपनाने के फल-स्वरूप उपज में काफी वृद्धि हुई। इन सब उपायों का मुख्य उद्देश्य तो उपज बढ़ाना था परन्तु इससे बड़े किसानों को ही प्रमुख रूप से लाभ पहुंचा क्योंकि वे ही सुधरे तौर-तरीकों का लाभ उठाने के योग्य थे।

इस प्रकार हमने देखा कि ग्राम विकास के लिए किए गए इन प्रयत्नों से गांव के गरीबों की दशा सुधारने में कोई उल्लेखनीय लाभ नहीं हुआ। सोचा तो यही गया था कि इसका लाभ बड़ा व्यापक होगा और इससे पूरा देश लाभान्वित हो सकेगा। हुआ यह कि जो लोग पहले से ही खुशहाल थे, उन्होंने ही इसका लाभ उठाया और वे और भी ज्यादा खुशहाल हो चले। गरीबों की पहुंच मंहगे साधनों तक कम ही थी।

विशेष कार्यक्रम

पिछले एक दशक में यानि चौथी पंचवर्षीय योजना के शुरू होने से लेकर इस बात के प्रयत्न किए जाने लगे कि कुछ ऐसे विशेष कार्यक्रम तैयार किए जाएं जिनमें कि गांव के गरीब किसानों का विशेष ध्यान रखा जाए। इनका नाम था 'छोटे किसानों के लिए

विकास एजेंसी' (एस०एम०डी०ए०) और 'सीमान्त किसान तथा कृषि मजदूर एजेंसी' (एम० एम० ए० एल०) इसी प्रकार और योजनाएं भी तैयार की गईं जैसे 'सूखा प्रवृत्त क्षेत्र कार्यक्रम,' 'पहाड़ी क्षेत्र तथा कबायली विकास कार्यक्रम' इन कार्यक्रमों का उद्देश्य यह है कि विशेष क्षेत्र अथवा विशेष परिस्थितियों या वर्ग के लोगों की विशेष कठिनाइयों का जायज़ा लिया जाए और उन्हें दूर करने के कुछ उपाय निकाले जाएं। इन सब कार्यक्रमों के परिणामों से एक अजीब मिली जुली तस्वीर सामने आती है। इन कार्यक्रमों का निस्संदेह गांव के गरीबों की समस्याओं पर काफी प्रभाव पड़ा और निश्चित रूप से पिछले प्रयत्नों की तुलना में इनसे ज्यादा लाभ पहुंचा। फिर भी यह निश्चित है कि गांवों के अधिकांश गरीब लोग अब तक भी उन सुविधाओं का लाभ नहीं उठा पाए। बराबर यही देखने में आ रहा है कि जिन किसानों को फायदा पहुंचता है वे अपेक्षाकृत खुशहाल हैं और जो सचमुच बहुत गरीब हैं, वे इनसे वंचित रह गए।

इस स्थिति के कई कारण हैं। पहला कारण है कि हमारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था में संस्थागत गठन ही ऐसा है कि यानी भूमि संबंध प्रणाली, उत्पादन व्यवस्था, ऋण की व्यवस्था, उपज की बिक्री के लिए हाट व्यवस्था आदि व्यवस्थाओं में कम खुशहाल किसान इन सुविधाओं का लाभ नहीं उठा पाते। यद्यपि छोटी जोतों पर भी प्रति एकड़ पैदावार जरूरी तौर पर कम नहीं है। (बल्कि कहीं तो वास्तव में ज्यादा भी हो सकती है) फिर भी असलियत यह है कि छोटे किसान के पास इतना कहां फालतू उत्पादन बच पाता है कि वह उसे बेचकर मुनाफा कमा सके। दूसरी तरफ उसे कदम-कदम पर दिक्कतों का सामना करना पड़ता है जैसे ऋण लेने में, साधन जुटाने में, माल बेचने में, बैंकों और सहकारी समितियों या सरकार द्वारा दी जाने वाली सुविधाओं का भी वे लाभ नहीं उठा पाते। इसलिए कोई भी कार्यक्रम तब तक पूरी तरह कामयाब नहीं हो सकता जब तक कि संस्थागत परिवर्तन और सुधार न किए जाएं और ग्रामीण क्षेत्रों में शोषण करने वाला तत्व या तो कम या खत्म न कर दिया जाए।

दूसरा कारण यह है कि इनमें से अधिकांश कार्यक्रमों को अपनाते समय एक-सा दृष्टिकोण रखकर काम किया गया यानी इस बात की तरफ पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया कि स्थानीय परिस्थितियां क्या हैं और स्थान विशेष में उनका परस्पर संबंध क्या है। वास्तव में जगह-जगह की स्थितियां भिन्न-भिन्न हैं और इसी वजह से सब जगह एक-सा दृष्टिकोण नहीं अपनाया जा सकता, कहीं एक बात पर जोर देना चाहिए था तो कहीं दूसरी बात पर। जरूरत इस बात की थी कि कार्यक्रम तैयार करने वाले संगठन को स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखकर उन्हें तैयार करने की स्वतंत्रता होती।

इस संदर्भ में एक और बात बाधक सिद्ध हुई। दृष्टिकोण सर्वांगीण नहीं रहा। आर्थिक गतिविधियों का परस्पर संबंध है और अगर इन के बीच तालमेल नहीं बैठता तो भले ही कार्यक्रम कितना ही अच्छा क्यों न हो पर इनमें सफलता नहीं मिल सकती। इसलिए दृष्टिकोण सर्वांगीण हो। जब नए बीज अपनाने का काम शुरू किया जाए विशेष रूप से छोटे किसानों में, तो साथ ही विस्तार सेवा उन्हें जानकारी दे, ठीक समय पर खाद, पानी ऋण आदि सभी साधन जुटाए जाएं। अगर इन साधनों में से एक भी नहीं मिलता तो दूसरे साधनों का फायदा नहीं उठाया जा सकता और छोटे किसानों को ऐसी योजना से कोई फायदा नहीं मिल पाता।

सर्वांगीण दृष्टिकोण

अगर गांव के गरीब को दरअसल, फायदा पहुंचाना है तो पूरी आर्थिक व्यवस्था का सर्वांगीण सर्वेक्षण करना होगा यानी पशुपालन, मुर्गीपालन, मछलीपालन, ग्रामोद्योग, आदि सभी क्षेत्रों पर ध्यान देना होगा केवल उसी हाल में गांवों की गरीबी की समस्या और उसके हल के बारे में पूरा जायजा लिया जा सकेगा। किस काम का कितना महत्व है और क्या कदम उठाए जा सकते हैं, इस सब बातों पर विचार किया जा सकता है।

इनमें से अधिकांश कार्यक्रमों का एक उल्लेखनीय पहलू यह भी है कि इनके कार्यान्वयन में कई एजेंसियां लगी हुई हैं। जब तक ये सभी एजेंसियां मिल-जुल कर काम न करें तब तक इस बात का खतरा बना रहता है कि शृंखला की कोई भी कड़ी यदि अगर कमजोर है तो उससे पूरा कार्यक्रम ही गड़बड़ा जाएगा और नाकामयाब रहेगा। उदाहरण के लिए आप किसी छोटे किसान या खेतिहर मजदूर को एक दूधारू पशु देते हैं तो इस बात का भी विश्वास होना चाहिए कि उस पशु की देख-रेख की सुविधाएं भी जुटाई जाएं जैसे उसका बीमा हो, चारा मिल सके, ठीक समय पर दूध बेचने की व्यवस्था हो। इन सब कामों के लिए-अलग एजेंसियों की जरूरत हो सकती है। अगर इनमें से एक भी एजेंसी का काम ठीक तरह नहीं होता तो सारा काम गड़बड़ हो जाएगा और पूरे कार्यक्रम का उद्देश्य ही बेकार साबित होगा। अगर किसान या मजदूर अपना दूध ही न बेच पाए और उसे पैसा न मिले या उसका मवेशी बीमार पड़ जाए तो उसे तो जबर्दस्त घाटा होगा। उसका तो विश्वास ही उस कार्यक्रम में डिग जाएगा। आस-पास के लोगों का भी विश्वास उठ जाएगा। इसलिए सब एजेंसियों में तालमेल बैठा कर काम किया जाए।

गांव के गरीबों के लिए सर्वांगीण दृष्टिकोण अपनाया जाए, कामों के बीच तालमेल हो। यही कारण है कि नई योजना के अन्तर्गत खण्ड स्तर और समन्वित ग्राम विकास पर जोर दिया गया है। पर इसके लिए कारगर तंत्र की जरूरत है, जो स्थानीय आवश्यकताओं और साधनों (मिट्टी, पानी, जंगल, खनिज द्रव्य आदि) का जायजा लें। इनकी उपलब्धि तथा परस्पर संबंधों को ध्यान में रखकर और प्रगति का जायजा लेकर काम करें। पर कारगर तंत्र के लिए आवश्यक धन भी मिलना चाहिए और उन्हें पैसे को किस प्राथमिकता के आधार पर खर्च किया जाए, इस बात का भी ज्ञान होना चाहिए यह सब आसान काम नहीं है और यह भी संभव है कि प्रगति धीमी हो और शुरू में रुक-रुक कर काम हो पर शुरुआत तो करनी ही पड़ेगी और हिम्मत से निर्णय लेने होंगे।

क्षेत्र योजना

समाकलित क्षेत्र योजना में, चाहे वह खण्ड स्तर की हो या जिलास्तर की, उस क्षेत्र विशेष की आवश्यकताओं, साधनों तथा समस्याओं पर विस्तार से विचार किया जाता है और इस बात की तो बहुत पहले से ही आवश्यकता अनुभव की जाती रही है कि उन सभी पर समन्वित रूप से काम किया जाये। दुर्भाग्यवश सरकारी तंत्र में अलग-अलग महकमें केवल अपने ही काम से सरोकार रखते हैं यानी एक दूसरे से कोई मतलब नहीं रखते और इसलिए प्राय: कामयाबी नहीं मिलती। हर महकमे का अपना बजट होता है, अपना कार्यक्रम होता जोकि राज्य स्तर पर तैयार होता है और फिर उसे जिले और खंडों में बांटा जाता है। इन कार्यक्रमों और योजनाओं में जिला या खण्ड स्तर पर कोई तालमेल नहीं बैठाया जाता। इस तरह अलग-अलग महकमों की अलग-अलग योजनाएं आपस में यूं ही में जुड़ी होती हैं। इसलिए इस बात की जरूरत है कि स्थानीय स्तर पर (जिला या खण्ड जैसी भी योजना इकाई हो) विशेष तंत्र का गठन किया जाए और वही योजना तैयार करे, ताकि कभी कभी समन्वय करने वाली बैठकें बुलाकर कर्त्तव्य की पूर्ति समझ ली जाए। इसका भी काफी समय से अनुभव तो किया जाता रहा पर कुछ राज्यों में ही ठोस कदम उठाये गये। ये दिक्कतें योजनाओं को कार्यान्वित करने में पेश आती हैं। यह उल्लेखनीय है कि अब छोटे किसानों और सीमान्त किसानों तथा खेतिहर श्रमिकों के लिए बनाई गई एजेन्सियां विभिन्न विभागों की गतिविधियों के बीच तालमेल बैठाने का काम कर सकती हैं अगर यह काम व्यवस्थित रूप से किया जा सकता है और अब तक प्राप्त अनुभवों से आशा बंध सकती है।

अगर हम चाहें कि इस प्रकार योजना तंत्र सफल हो तो इस तंत्र के पास अपनी निधि होनी चाहिए या कुछ ऐसे साधनों का ज्ञान होना चाहिए जो कि प्राप्त हो सकें। अन्यथा सारी योजना अवास्तविक होगी और जरूरत से ज्यादा महत्वकांक्षी होगी और इस का अन्त यही होगा कि पूरी योजना ही ठप्प हो जाएगी। 1978–83 की योजना में ग्रामविकास के लिए क्षेत्रोन्मुखी कार्यक्रमों के हेतु 2800 करोड़ रुपये का प्रावधान रखा गया है। यह जरूरी नहीं है कि पूरा रुपया केन्द्रीय या राज्य सरकार ही दें, स्थानीय वित्तीय साधनों जैसे बैंक आदि का भी लाभ उठाया जा सकता है। ये प्रयत्न कितने सफल होंगे, यह स्थानीय काम करने वालों की सूझ-बूझ पर निर्भर करेगा।

जन सहभाग

स्थानीय स्तर पर तैयार की जाने वाली योजना ऐसी होनी चाहिए जिसमें कि लोग भाग ले सकें। उसमें लोगों की महत्वाकांक्षा और आवश्यकताएं आभासित होनी चाहिएं। इसमें सफलता तभी मिल सकती है जबकि लोग योजना की प्रक्रिया और उसके कियान्वयन से संबद्ध हों। सच्चाई यह है कि "जिसके पैर न फटी बिवाई वह क्या जाने पीर पराई।" स्थानीय लोग ही अपनी समस्याओं के बारे में ज्यादा जागरूक होते हैं। इसीलिए इस प्रकार की योजना का स्थानीय स्वशासन व पंचायती राज अविभाज्य अंग है। लोगों के स्थानीय संगठनों से तो योजना तैयार करने की आशा नहीं की जा सकती, वास्तव में इसे तो विशेषज्ञ तंत्र ही तैयार कर सकता है। कियान्वयन की प्रगति के बारे में भी इन्हीं संगठनों को अवगत कराया जाना चाहिए। इस व्यवस्था में भी इस बात का ध्यान रखा जाए कि वे लोकप्रिय संस्थाएं जोकि कार्यक्रम चलाती हैं गरीब लोगों का सच्चा प्रतिनिधित्व करती हैं या नहीं। पिछला अनुभव तो बताता है कि ऐसी संस्थाएं सबल ताकतों के हितों का प्रतिनिधित्व करती हैं और उनसे गरीबों की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के पूरे होने की आशा नहीं रखी जा सकती। इसलिए जब तक संस्थागत परिवर्तन नहीं किया जाता तब तक निर्वाचित स्थानीय संस्थाएं गरीब लोगों का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकतीं। गांव के गरीब लोग कमजोर हैं और संगठित भी नहीं हैं। जब तक कार्यक्रमों में उन का हाथ नहीं होता, उनके कार्यान्वियन में वे हिस्सा नहीं लेते तो गड़बड़ी होके रहेगी।

सहकारी समितियां

गांव के गरीबों की स्थिति में सुधार लाने के लिए दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि सहकारी समितियों को सबल बनाया जाए। इस बात की ओर विशेष ध्यान देना जरूरी है कि इन संस्थाओं में अमीर लोगों का बोल-बाला न हो ताकि इन संस्थाओं का पैसा अमीरों की जेबों तक न पहुंचकर उन गरीब लोगों को पहुंचे जिन्हें इसकी जरूरत है, जिनके लिए यह पैसा है। अगर इन संस्थाओं पर भी राजनीतिक स्वार्थ हावी रहे तो उनका प्रभुत्व कायम हो जाएगा और अपेक्षित परिणाम नहीं मिलेंगे। इन सहकारी समितियों के पैसे का दुरुपयोग नहीं हो पाए, यह भी संभव है कि सहकारी समितियों में अमीर तबके को न घुसने दिया जाए क्योंकि इन समितियों को तो गरीब लोगों के हितकारी कार्यक्रमों को ध्यान में रखकर ही काम करना है। इस तरह ये संस्थाएं कमजोर नहीं होंगी बल्कि अनुभव तो यह बताता है कि सहकारी संस्थाओं में ऋण का भुगतान न करने वाले अधिकांश लोग अमीर हैं, गरीब तो बहुत कम हैं। इसके लिए कायदे-कानूनों में भी तबदीली करनी चाहिए ताकि गरीब लोग उनका पूरा लाभ उठा सकें।

लोगों की ये संस्थाएं अधिकतर शोषण और निहित स्वार्थों की गढ़ बन जाती हैं, यह खतरा सच्चा है लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि लोगों को इसमें भागीदार न बनने दिया जाए। इस बात पर विशेष बल दिया जाए कि लोग इसमें ईमानदारी से भागीदार बनें और वे लोग हिस्सा लें जिनके लिए विकास योजनाएं बनाई गई हैं। हालांकि यह काम इतना आसान नहीं है। इसमें अड़चनें पैदा होंगी। कुछ लोग दबाव डालेंगे, कुछ लोग अनुभव-हीन होंगे, पर यत्न किया जाए। धीरे-धीरे कमियां दूर हो जाएंगी। गलतियां भी होंगी पर धैर्य और नेकनियती से उद्देश्य पूरा होगा। इतना ही काफी नहीं कि कोई कार्यक्रम या योजना ठीक तरह तैयार की गई है। उसे कारगर ढंग से अमल में लाना जरूरी है। प्रशासनिक ढांचा ऐसा हो कि उसी के लोग देख-रेख कर सकें व इस बात की जांच कर सकें कि सभी काम ठीक तरह चल रहे हैं और सब कामों के बीच ठीक ताल-मेल बैठाया जा रहा है। यह देख-रेख सामान्य जांच पड़ताल से कारगर नहीं हो सकती। प्रगति की लगातार जांच की जाए ताकि अगर कहीं कोई कमी नजर आए, ठीक समय पर इसका पता चल जाए और उसे ठीक कर दिया जाए। देख रेख करने वाले व्यक्तियों को भी अपने काम की अच्छी जानकारी होनी चाहिए। काम करने वाले लोगों की काम के प्रति निष्ठा और ध्येय में विश्वास हो। इस बात के प्रति भी आश्वस्त होना चाहिए कि जिनके लिए योजना बनाई गई है वास्तव में उन्हें फायदा पहुंचे और साधनों से अधिकतम लाभ मिले।

कार्यक्रमों की जानकारी

भले ही कार्यक्रम गरीब लोगों के लिए हों पर संभव है गरीब लोग उन से फायदा न भी उठाएं। इसके कई कारण हैं। शायद यह भी पता न हो कि उनके फायदे के लिए कौन-कौन से कार्यक्रम हैं और शायद वे यह भी न जाने कि उनके हित उन कार्यक्रमों में निहित हैं। शुरू-शुरू में ऐसा होता भी है। यह भी संभव है कि उन्होंने पहले कभी ऐसे कामों में धोखा खाया हो। उन्होंने देखा हो कि उन्हें फायदा नहीं हुआ था या पैसे वालों को ही फायदा पहुंचा था। ऐसी हालतों में प्रशासन स्वयं इसकी पूरी जानकारी गरीब तबके तक पहुंचाए।

एक और दिक्कत उन कर्मचारियों के सामने आती है जो कि कमजोर तबके के बीच काम करते हैं। उन्हें लक्ष्य निर्धारित करना मुश्किल होता है यानी इतने क्षेत्र में, इतने समय में, इतना नया बीज लगाना है, इतने समय में इतने गोबर-गैस संयंत्र लगाने आदि। ऐसी हालत में यह होता है कि कर्मचारी उन लोगों की तरफ विशेष ध्यान देते हैं जो कि निर्धारित लक्ष्य पूरा कर सकते हैं और वास्तविक कार्यक्रम की सफलता की ओर ध्यान नहीं दे पाते। बेचारा कमजोर तबका तो साधनहीन और आहिस्ता चलने वाला होता है, और उसकी उपेक्षा कर दी जाती है। साधनसम्पन्न लोगों को ही फायदा पहुंचता है। इसलिए लक्ष्य निर्धारित करने की प्रणाली पर फिर से विचार किया जाए। हालांकि पूरे कार्यक्रम को टुकड़ों में बांटना होगा लक्ष्य तो निर्धारित करने होंगे। पर मुख्य लक्ष्य तो गरीब तबके का हित ही होना चाहिए। इसलिए लक्ष्य निर्धारित करते समय उन लोगों की भी सलाह ली जानी चाहिए। जो कर्मचारी योजना कार्यान्वित करें, वे लक्ष्यों के निर्धारण में सहयोग दें। जब वे इनमें भागीदार बनेंगे तो वे ज्यादा कारगर और दायित्व पूर्ण तरीके से काम करेंगे।

सही दिशा

अच्छी नीति के अथवा अच्छी प्रशासनिक व्यवस्था के होने से ही काम नहीं चलता। सफलता पाने के लिए कार्यक्रमों की व्यवस्था व प्रबन्ध के लिए विशेष दक्षता, ठीक रवैया तथा समुचित दिशा-निर्देश होना चाहिए और इन सबके लिए जरूरत है प्रशिक्षण की। प्रत्येक व्यक्ति का प्रशिक्षण भी उपयुक्त और कार्यसंगत होना चाहिए। यानी जैसे हिसाब-किताब रखने, ऋण का खाता रखने, खरीदने-बेचने आदि का उपयुक्त प्रशिक्षण हो। केवल देख-रेख से ही काम नहीं चलता, देख-रेख करने वाला ऐसा हो कि तत्काल भांप ले कि गलती कहां हुई है, या हो सकती है, कैसे उसका पता लगाया जाए, कैसे उसे सुधारा जाए। वह सही दिशा निर्देश भी कर सके। कई समस्याओं के लिए नए प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी। इसलिए रिफ्रैशर (पुनश्चर्या) कोर्स भी हो यानी प्रशिक्षित लोगों को नई बातें सिखने का थोड़े समय के लिए मौका मिलता रहे।

विकास की गतिविधियों का परस्पर संबंध है। कर्मचारी केवल अपने कार्य विशेष में ही दक्ष नहीं बल्कि और विभागों के साथ मिल-जुल कर काम करना जानें। कार्यक्रम की प्रबन्ध और व्यवस्था अब तो एक विशेषज्ञता वाली विद्या है। इसके लिए विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता है। ताल-मेल बैठाने में कठिनाइयां आती ही हैं और कहीं गड़बड़ होने की भी आशंका रहती ही है।

यह तो जरूरी है कि विकास कार्यक्रम का कार्यान्वयन संबंधी प्रशिक्षण हो पर इसके अलावा इन कर्मचारियों का रवैया भी ठीक हो—यह रवैया काम के प्रति, और लोगों के प्रति विशेष रूप से गरीबों के प्रति ठीक हो। प्रशिक्षण में इन बातों पर जोर दिया जाए। संस्थागत परिवर्तन भी जरूरी हैं। गरीब और जरूरतमन्द लोगों के साथ संपर्क स्थापित कर प्रशासन उनकी सहायता करे और उन्हें रास्ता दिखाए, उनके पास कर्मचारी जाएं न कि यह इन्तजार करें कि गरीब उनके पास आएंगे। इसलिए कर्मचारियों को जन-सम्पर्क का भी प्रशिक्षण दिया जाए। उन्हें सूचना-प्रसारण के बारे में भी प्रशिक्षण दिया जाए। ऐसा न होने पर वे लोग फायदा नहीं उठा पाएंगे जो झिझकते हैं या जानकारी नहीं रखते।

संक्षेप में, नीति निर्धारण के प्रमुख तत्व ये हों:—

(क) समेकित क्षेत्र-योजना में कृषि, पशुपालन तथा संबंधित धंधों सहित, ग्राम-उद्योग तथा अन्य रोजगार पैदा करने वाले ग्राम कार्यक्रम शामिल किए जाएं।

(ख) गरीब तबकों की विशेष आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर ही क्षेत्र योजना तथा विकास कार्यक्रम तैयार किए जाएं।

(ग) कार्यक्रमों के कार्यान्वयन की कारगर ढंग से देखरेख हो।

(घ) सघन-प्रशिक्षण दिया जाए ताकि कर्मचारियों में अपेक्षित कौशल आए, लोगों की आकांक्षाओं और उद्देश्यों और कार्यक्रमों के अनुरूप कर्मचारियों के रवैये बनें।

उक्त नीति की सफलता के लिए नीचे लिखे बुनियादी परिवर्तन वांछनीय हैं :—

(क) संस्थागत सुधार, मुख्यतः भूमि संबंधों और उनके कार्यान्वयन में सुधार किए जाएं।

(ख) संस्थाओं का विकेन्द्रीकरण जैसे पंचायतों का यह काम होना चाहिए कि वे देखें कि सब से ज्यादा अपेक्षित गरीब तबका कार्यक्रमों को तैयार करने और उनके कार्यान्वयन में भागीदार बने।

(ग) सहकारी संस्थाओं को बढ़ावा दिया जाए और उन्हें सबल बनाया जाए ताकि वे गरीब लोगों के हितों को ध्यान में रखते हुए उनके लिए साधनों और सेवाओं जैसे ऋण आदि की व्यवस्था करें। ✱

अनुवादक : ब्रजलाल उयाल
आ० कृ० अनुसंधान परिषद्
कृषि भवन, न० दि०

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि की भूमिका

जे. एस. गुप्ता

भारत एक अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था वाला देश है। भारत की 70 प्रतिशत जनता कृषि पर निर्भर है। प्राचीन काल से ही भारत में कृषि का महत्व रहा है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कृषि का बड़ा महत्व है। कृषि भारतीयों की जीविका का एक साधन ही नहीं, वरन् भारतवासियों के जीवन-यापन का एक तरीका है, जिसने भारतीयों के विचारों, संस्कृति, लक्ष्यों आदि को सैकड़ों वर्षों से प्रभावित किया है। भारत में ही नहीं, विश्व में भी कृषि को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी है। कृषि के विकास पर उद्योग धन्धों का विकास निर्भर है।

देश की राष्ट्रीय आय का लगभग 50 प्रतिशत भाग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि से ही प्राप्त होता है। कुल राष्ट्रीय आय का 50 प्रतिशत भाग केवल कृषि से प्राप्त होता है। कृषि राष्ट्रीय आय का प्रमुख स्रोत है।

देश के निर्यातों में कृषि वस्तुओं का महत्वपूर्ण स्थान है। जूट, तिलहन, लाख, चाय, तम्बाकू, मसाले एवं दाल आदि निर्यात व्यापार में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन वस्तुओं के निर्यात से देश को प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये की बहुमूल्य विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है।

कृषि मनुष्यों के लिए भोजन और पशुओं के लिए चारा प्रदान करती है। उद्योग धन्धों को कच्चा माल प्रदान करती है। चना, चावल, गेहूं, जूट, गन्ना, तम्बाकू, मूंगफली, कपास तथा तिलहन पर अनेक उद्योग धन्धे निर्भर हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कृषि का भारतीय अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण स्थान है। अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में भी कृषि का महत्वपूर्ण योगदान है।

भारत सरकार की कृषि नीति

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हमारी राष्ट्रीय सरकार ने कृषि के विकास पर विशेष जोर दिया है। राष्ट्रीय पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है। राष्ट्रीय सरकार ने कृषि के यंत्रीकरण की दिशा में कई महत्वपूर्ण कदम उठाये हैं। सन् 1947 में सरकार द्वारा केन्द्रीय ट्रैक्टर संघ की स्थापना की गई है। राज्यों में कृषि उद्योग निगमों की भी स्थापना की गई है। ये निगम कृषकों को किराया खरीद प्रणाली के आधार पर कृषि यंत्र प्रदान करते हैं। कृषकों को उन्नत बीज, खाद तथा हल प्रदान किए जाते हैं।

कृषि के विकास के लिए कृषि विभाग द्वारा बड़े-बड़े कृषि फार्म स्थापित किए गए हैं।

कृषि का विस्तार

प्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। कृषि के क्षेत्र में मुख्यतः खाद्यान्न एवं कच्चे माल का उत्पादन बढ़ाने पर बल दिया गया था जिससे देश की खाद्यान्न समस्या हल हो सके और देश में खाद्यान्न के संबंध में आत्मनिर्भरता लाई जा सके। भारत सरकार ने 1955 में कृषि भूमि एवं ग्रामीण साख संबंधी नीति की घोषणा की थी। प्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि विकास कार्यक्रमों, सामुदायिक विकास, सिंचाई एवं बाढ़ नियंत्रण पर 601 करोड़ रुपये व्यय किए गए।

आधुनिक उपकरण, कीटनाशक दवा, रसायनिक खाद तथा कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण आदि का आयोजन किया गया। दवा छिड़कने के कार्यक्रम भी शुरु किए गए।

भारत सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों तथा नगरीय क्षेत्रों में मण्डियों तथा गोदामों का निर्माण किया गया। प्रत्येक राज्य में राज्य गोदामों निगमों की स्थापना की गई।

कृषि विकास की आवश्यकता क्यों ?

हमारे देश में कृषि का उत्पादन मांग के अनुसार नहीं हो पा रहा है। मांग एवं पूर्ति में बराबर समन्वय नहीं है। उद्योगों को कच्चा माल पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल रहा है। बाजार में वस्तुओं के भाव बढ़ रहे हैं उसका मुख्य कारण है देश में उत्पादन कम है और वस्तुओं की मांग ज्यादा है। कृषि उत्पादन के मूल्य बढ़ाये जाते हैं तो कच्चे माल की कीमत बढ़ जाती है और उद्योगों के द्वारा जो उत्पादन होता है उसकी कीमत अधिक होती है। मजदूरों की मजदूरी भी बढ़ जाती है। कृषि उत्पादन कम होने का भारतीय अर्थव्यवस्था पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है।

दूसरी योजना में उद्योगों के विकास को प्राथमिकता दी गई परन्तु कृषि को भी प्राथमिकता की श्रेणी में रखा गया। सरकार की यह नीति रही है कि देश को कच्चे माल तथा खाद्यान्न के संबंध में आत्मनिर्भर बनाया जाए। इस योजना में भू-प्रयोग के संबंध में विशेष जोर दिया गया। राष्ट्रीय स्तर पर कृषि मूल्यों के संबंध में एक पृथक् से नीति बनाई गई। दूसरी योजना में कृषि, सामुदायिक विकास, सिंचाई तथा बाढ़ नियंत्रण पर 901 करोड़ रुपया व्यय किया गया।

तीसरी योजना में कृषि के विकास को पुनः प्राथमिकता दी गई क्योंकि द्वितीय योजना काल में देश की खाद्यान्न समस्या विकट होती जा रही थी। अतः कृषि का विकास करने के लिए प्रभावपूर्ण तरीके अपनाने का निश्चय किया गया। तीसरी योजना में कृषि, सामुदायिक विकास, सिंचाई आदि योजनाओं के विकास पर 1109 करोड़ रुपये व्यय किए गए।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की गई। कृषि उत्पादन में 5 प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया गया। सरकारी खेती को प्रोत्साहन दिया गया। कृषि से संबंधित क्षेत्र के लिए 2719 करोड़ रुपए व्यय करने का प्रावधान रखा गया।

देश की पांचवीं योजना में भी कृषि के विकास को प्रधानता दी गई है। पांचवीं योजना में कृषि का प्रस्तावित परिव्यय सार्वजनिक क्षेत्र में 4730 करोड़ रुपए का तथा निजी क्षेत्र में 2950 करोड़ रुपए का तथा कुल 7680 करोड़ रुपये था।

पिछले 30 वर्षों में कृषि के विकास पर करोड़ों रुपया व्यय हुआ है परन्तु फिर भी हम खाद्यान्न तथा उत्पादन के क्षेत्र में पूर्णतया आत्मनिर्भर नहीं हुए हैं। किसानों को उत्तम बीज, खाद, कीटनाशक दवाइयां तथा सिंचाई सुविधाओं का अधिकतम लाभ दिया गया है, इसके बाद भी कृषि की वार्षिक विकास दर 2.5 प्रतिशत ही रही है।

वर्ष 1953-54 में खाद्यान्न का उत्पादन 7.2 करोड़ मीट्रिक टन था जो 1977-78 में बढ़कर 12.5 मीट्रिक टन हो गया। वर्ष 1951-52 से 1974-75 के दौरान कृषि उत्पादन 7 प्रतिशत ही बढ़ा है। कृषि के विकास की अधिक से अधिक आवश्यकता है। छठी पंचवर्षीय योजना में कृषि को विशेष प्राथमिकता देने की आवश्यकता है।

कृषि के विकास के संबंध में सुझाव :

कृषि विकास के संबंध में कुछ सुझाव ये हैं :—

1. खेतों के उप-विभाजन को रोका जाए तथा छोटे-छोटे एवं बिखरे खेतों की चकबन्दी कराना बहुत ही आवश्यक है। छोटे-छोटे बिखरे खेतों से लाभ नहीं होता अपितु खेती का व्यय बढ़ जाता है।
2. नवीन कृषि की तकनीकी से किसान अभी अवगत नहीं हैं। उन्हें इनसे अवगत कराया जाए।
3. कृषकों को शोषण से बचाया जाए। अभी भी महाजन लोग कृषकों का शोषण करते हैं। भारतीय कृषक की स्थिति दयनीय है, उसे ऋण महाजनों से लेना पड़ता है। सहकारी समितियों द्वारा अधिक से अधिक कृषकों को ऋण उपलब्ध कराया जाए तथा ऋण नीति को उदार बनाया जाए।
4. भारतीय कृषि मानसून पर निर्भर है। सिंचाई सुविधाओं को बढ़ाया जाए। इस संबंध में अभी पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई है।
5. फसलों का बीमा कराया जाए जिससे किसान को हानि न उठानी पड़े।
6. किसान को उसकी उपज का उचित मूल्य नहीं मिल पाता हैं। कृषि विपणन समितियों को गांव-गांव में किसानों की उपज को खरीदना चाहिए और उसकी फसल का उचित मूल्य दिया जाए, जिससे कृषकों को प्रोत्साहन मिलेगा।
7. भूमि के कटाव के कारण भूमि की उर्वरा शक्ति नष्ट हो जाती है। किसान को भूमि के कटाव हो जाने से काफी हानि होती है। इस संबंध में अवाश्यक कदम उठाने की आवश्यकता है।
8. किसान को उन्नत बीज तथा खाद समय पर उपलब्ध नहीं होता है आवश्यकता इस बात की है कि किसान को उन्नत बीज, खाद तथा कीटनाशक दवाइयां विकास खण्ड स्तर पर ग्राम सेवक द्वारा उपलब्ध कराई जाएं।
9. किसान के पशुओं का भी विकास किया जाए।
10. किसान को विद्युत् शक्ति सिंचाई के लिए आसानी से उपलब्ध कराई जाए।
11. युवक एवं प्रगतिशील कृषकों के लिए उन्नत कृषि प्रणालियों का प्रशिक्षण विकास खण्ड स्तर पर आयोजित किया जाए एवं उन्हें उन्नत कृषि करने पर पुरस्कृत किया जाए।
12. मण्डियों में किसान को सस्ते किराए पर गोदाम सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएं।
13. रेडियो एवं अखबारों में कृषि पदार्थों के भाव प्रसारित किए जाएं जिससे किसानों को भावों के संबंध में ज्ञान रहे।

देश के आर्थिक विकास के लिए एवं खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए कृषि की सस्मयाओं को हल करना नितान्त आवश्यक है। देश में औद्योगिक क्रांति तब ही आ सकती है जब देश में कृषि उत्पादन अधिक होगा। अन्य विकसित देशों की तरह भारत में भी प्रति हैक्टर कृषि उत्पादन अधिक होना चाहिए।

जे० एस० गुप्ता
सहायक संचालक
एफ० 118/20 शिवाजीनगर (1464)
भोपाल (म० प्र०).

पादप

इन्द्रराज सिंह

नियति ने क्या
निर्णय लिया है
मुझे सर के बल
पैदा किया है।

कि जिससे
न बोल सकूं मैं
और तेरे सपूत के गुण
न तोल सकूं मैं

वह मुझे कभी नोचता है
कभी काटता है
घाव बहते रहे हैं
पादप बाट का है।

काम के बदले अनाज : कुछ अनुभूतियां

दुर्गाशंकर त्रिवेदी

चार हजार पांच सौ रुपया खर्च करके 'काम के बदले अनाज योजना' को अपनी पंचायत में शुरू करके हमने परख लिया है। देहाती मजदूरों के लिए यह बड़ी काम की स्कीम है।"—पिड़ावा (जिला झालावाड़ राजस्थान की ग्राम पंचायत रामपुर के सरपंच श्री कृष्णदास ने यह जानकारी देकर कहा कि हम शीघ्र ही रायपुर से सुनेल तक गट्टी रोड पूरा कर देंगे। तो मैं पूछ बैठा :—"अभी तक कितना काम हो गया है कृष्णदास जी।"

वे बोले :—"13 हजार फीट हो चुका है, करीब चार हजार फीट नाली का निर्माण बाकी रह गया है। गिट्टी रोड का काम तेजी से चल रहा है। चूंकि काम वही दिया जा रहा है इसलिए मजदूर इस योजना में अपनत्व भी महसूस करता है। मुस्तैदी से काम भी करता है।"

"तो क्या आप मानते हैं कि इस योजना को लम्बे समय तक चलाया जाए तो देहाती बेरोजगारी प्रभावित होगी?

वे बड़ी गम्भीरता से बोले :—"है तो यह एकदम व्यावहारिक सूझबूझ! यह हम ग्रामीण नेताओं और जिला स्तरीय अधिकारियों पर निर्भर करता है कि हम इस योजना को देहातों की खुशहाली का कदम बनाएं या पलीता लगाने का।"

मुझे लगा कृष्णदास जी की इस दृष्टि में व्यावहारिक नेतृत्व क्षमता और अनुभव की दृष्टि बोल रही है। ग्रामीण नेतृत्व ही इस योजना की सफलता—असफलता के लिए जिम्मेदार है और रहेगा।

बाटी में सरपंचों के विशाल सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए राजस्थान के विद्युत् मंत्री श्री ललित किशोर चतुर्वेदी ने कहा :—"काम के बदले अनाज योजना" को द्रुतगति से लागू कर अपने-अपने क्षेत्र में इसके अन्तर्गत विकास कार्यों के निर्माण कार्य आरम्भ कर देने चाहिए। जो जितना चाहे काम करे। मार्च, "79 तक अधिकाधिक काम करने वाली पंचायतों को पुरस्कृत भी किया जाएगा।"

बूंदी के देहात के एक सरपंच ने हाडौती भाषा में बताया कि जो जमीन वाले लोग नहीं है देहाती इलाकों में उनके लिए यह योजना नया वरदान है, क्योंकि वे अब बेकार नहीं रहेंगे। रोजगार के साथ-साथ अनाज मिलेगा इसलिए गलत कामों में खरी मजदूरी खर्च नहीं होगी।" मैं अचानक उससे पूछ बैठता हूं कि "गलत काम क्या?" वह हंसकर कहने लगा : —"अजी यही ठर्रे के घूंट लगाने का शौक"। "हां शराब बन्दी भी होगी इससे"—मैं उसकी हां में हां मिलाने की गरज से बुदबुदाया।

यह कार्यक्रम क्यों ?

कई ग्रामीणों ही नहीं बुद्धिजीवियों के मन में भी उठा कि यह नया कार्यक्रम क्यों? असल में यह कार्यक्रम कृषि और सिंचाई मंत्रालय, भारत सरकार ने अप्रैल 77 में शुरू किया था परन्तु राजस्थान सरकार ने इसे 1978 में हाथ में लिया। ग्रामीण इलाकों में बड़ी संख्या ऐसे लोगों की है जो कि भूमिहीन हैं और काफी दिनों तक बेकार रहते है। राजस्थान में ऐसे अर्द्ध—बेरोजगारों की बड़ी तादाद है। सहरिया आदिवासी और मरुभूमि के निवासी सदा धन्धे की तलाश में रहते हैं। इधर गांवों में सार्वजनिक उपयोग के अनेक निर्माण कार्य जैसे सड़कें, पंचायत घर, स्कूल, सिंचाई के साधन आदि उचित देख-रेख व मरम्मत के अभाव में खराब होते रहते हैं। 'काम के लिए अनाज योजना' में 'एक पंथ दो काज' वाली बात होगी। ग्रामीण परिसम्पत्तियों का रख-रखाव तथा देहाती जनता के लिए नए रोजगार का अवसर पैदा करना। इस योजना में एक अंश अनाज तथा एक अंश नकद पैसा दिया जाता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में इस योजना के प्रति लोगों की तेजी से बढ़ती रुचि यह आस्था जमाती है कि योजना अपने लक्ष्य को ईमानदारी से निश्चित रूप से पूरा कर पाएगी। इस कार्यक्रम के मोटे तौर पर ये उद्देश्य हैं :—

(1) ग्रामीण बेरोजगारों के लिए उनके आस-पास के ही क्षेत्र में रोजगार के अधिक से अधिक अवसर तलाशे जाएं।

(2) सड़कें, सिंचाई परियोजनाएं, पाठशालाएं औषधालय, पशु चिकित्सालय जैसे स्थायी उपयोग के निर्माण कार्य करवाए जाएं। पुराने मरम्मत योग्य हैं उनकी मरम्मत कराएं।

(3) फालतू अनाज भण्डारण को उत्पादक कार्यों के लिए उपयोग।

इस प्रकार समाज के सबसे गरीब वर्ग के लोगों की सहायता के साथ ही साथ ग्राम का व सरकार का भला एक साथ होगा।

काम के बदले अनाज कार्यक्रम के लिए भारत सरकार ने 1977-78 में 6 हजार टन अनाज आवंटित किया था, जिसमें से 3 हजार 609 टन अनाज गत वर्ष उठा लिया गया था, शेष के इस वर्ष उपयोग की स्वीकृति दे दी गई है तथा 1 लाख 28 हजार टन और इस वित्तीय वर्ष के लिए निर्धारित किया गया है। 1978-79 के दौरान कुल साधन-स्रोत 14 करोड़ 72 लाख के होंगे।

इस योजना के अन्तर्गत किन कामों को प्राथमिकता मिलेगी इसका संकेत मुख्य मंत्री श्री भैरोंसिंह शेखावत ने इस प्रकार किया है :—"राज्य की 1978-79 की वार्षिक योजना को अंतिम रूप दिए जाने के समय यह इंगित किया गया था कि काम के बदले अनाज के लिए 10 करोड़ रुपये राज्य की योजना के लिए बढ़ाए जाएंगे। इस सहायता के अधिकाधिक उपयोग से गांव में गरीबों के लिए मूलभूत सामाजिक सेवाएं सुलभ कराने के उद्देश्य से यह निर्णय किया गया है कि सिंचाई विभाग के माध्यम से लघु सिंचाई, तालाब और जन स्वास्थ्य अभियांत्रिकी विभाग द्वारा टैंकों का निर्माण कराया जाए। विभिन्न पंचायत क्षेत्रों के गांवों में तालाब बनाने के लिए सामुदायिक विकास एवं पंचायत विभाग की भी सहायता सुलभ करवाई जाएगी। सड़कें, नालियां, स्कूल, औषधालय भवन, पशु चिकित्सालय, नहरें आदि ग्रामोपयोगी कार्यों को पहले हाथ में लिया जाएगा।"

इस प्रकार अभी तक जो भी कदम उठाए गए हैं वे क्षेत्रीय देहाती जनता के लिए वरदान सिद्ध हो सकते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि 'भ्रष्टाचार देवता भी काम के बदले अनाज लेने कहीं आगे न बढ़ जाएं।' यदि उनके सुरसा की तरह फैल जाने वाले हाथ बढ़ गए तो पलीता लगते देर भी नहीं लग पाएगी।

भारत सरकार ने इस योजना के अधीन उपलब्ध खाद्यान्न ठेकेदारों द्वारा मजदूरों को मजदूरी देने के लिए उपयोग किए जा सकने का प्रावधान भी किया है। राज्य सरकार उन्हें यह दें तो उन पर नियंत्रण भी रक्खे, नहीं तो मजदूर टापते ही रह जाएंगे और वे अपना गोदाम भरते रहेंगे।

अतः प्रयत्न यह होना चाहिए कि जहां भी काम शुरू हो वह वहां की जरूरतों को पूरा करने वाला हो तभी योजना में जनता की दिलचस्पी होगी। यदि उसने इसे ईमानदारी से अपना लिया तो ग्रामीण इलाकों का कायाकल्प करने की शुरूआत करने वाली भूमिका वह अदा कर देगी। ✱

पता :—
दुर्गाशंकर त्रिवेदी
दैनिक सोशलिस्ट समाचार
मकबरा बाजार
पो० आ० कोटा-324006

वेदों में वन, गाय और वृष्टि ✱

—बशीर अहमद मयूख

1. वन

आञ्जनगंधि सुरभिं बह्वन्नामकृषीवलाम्।
प्राहम् मृगाणां मातरमरण्यानिमशंसिषम् ॥ (ऋग्वेद 10? 146)
सुरभियुक्त है यह कानन यहवन यह माता
मैं इसकी ही स्तुति करता यह पूजनीय है।
खेती किये बिना ही भोजन अन्न प्रदाता
और मृगों का पालन करती जैसे माता ॥

2. गाय

यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रीकम्।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु 11611 (ऋक० 6/38)
तुम कृश को बलवान बनातीं भद्रवाणि हो,
शोभाहीन सुरूप बनाती हो गउओ।
क्षमता शक्ति तुम्हारी चर्चित हुई सभा में
आओ और हमारे गृह को भद्र बनाओ ॥

3. वर्षा :

महान्तं कोशमुदचा निषिंच स्यन्दन्तां कुल्या विषिताः पुरस्तात्।
घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि सुप्रपार्ण भवत्वघ्न्याभ्यः 11811
(ऋक० 5/83)
तीव्र स्वरों में कड़को-गरजो
धारण करो गर्भ फिर बरसो
जल वाले रथ पर चढ़ कर परिभ्रमण करो हे।
बन्धन-मुक्त करो वर्षा के जल की धारा
ऊबड़-खाबड़ धरती समतल हो प्रवेग से ॥

—2ल 17
विज्ञान नगर कोटा-5 (राज०)

अलीगढ़ जनपद में कृषि रक्षा उपायों का चमत्कारिक प्रभाव

सरसों पर कीटनाशक रासायनिक दवा का छिड़काव करते हुए

कृषि रक्षा उपायों के प्रति किसानों में बढ़ती दिलचस्पी के बारे में जब कृषि रक्षा अधिकारी श्री कृपाल सिंह से जानकारी की गई तो उन्होंने बताया कि सब्जी और तिलहन की खेती करने वाले किसान अब यह भली भांति समझ गए हैं कि कृषि रक्षा उपायों से कितने चमत्कारिक लाभ होते हैं। 1974–75 में अलीगढ़ जनपद में केवल 2 लाख मूल्य के कीटनाशक किसानों ने प्रयुक्त किए जबकि 1977–78 में यह धनराशि 5,50,000/- रु० (पांच लाख पचास हजार) तक बढ़ गई। इस वर्ष इससे अधिक कार्य होने की संभावना है जिसके लिए जनपद के विकास खण्डों में कार्यरत 17 कृषि रक्षा इकाइयां विशेष रूप से सक्रिय हैं जहां से किसानों को विभिन्न प्रकारों से फसलों में लगने वाली बीमारियों से बचाव की पूर्ण जानकारी, उचित कीटनाशक का उचित मूल्य देने के साथ-साथ पैर और पावर से चलने वाली छिड़काव की मशीनें भी दी जाती हैं।

कृषि रक्षा इकाई पर कार्यरत अधिकारी व कर्मचारी किसानों को उसके खेत पर जाकर छिड़काव की विधि का प्रदर्शन करते हैं और उन्हें आवश्यक प्रशिक्षण भी देते हैं। यही नहीं, कृषि विभाग से संबंधित अधिकारी भी जनपद के अपने भ्रमण के कार्यक्रम में इस प्रकार की गतिविधियों में स्वयं भाग लेते हैं और मार्गदर्शन करते हैं जिसका परिणाम यह हुआ है कि अलीगढ़ जनपद में सब्जियों की खेती में कई गुना वृद्धि हुई है। अलीगढ़ की टमाटर और गोभी की सब्जियों की फसल ने तो उत्तर भारत में नया कीर्तिमान स्थापित किया है जिसका प्रमुख कारण यह है कि टमाटर और गोभी पर लगने वाले रोगों पर डाईथिन एम० 45 रोगोर, 40 न्यूवान, 100 मैलाथियान, 50 ई० सी० ने अपना जादू कर दिखाया है। प्रारम्भ में माहू,

हुकमसिंह देशराजन

के प्रकोप के भय से तिलहन की खेती बेहद कम होने लगी थी परन्तु अब कृषि रक्षा उपायों से तिलहन के प्रमुख माहू कीट का रोगोर 40, डाइमोक्रोन 100 और वासोडिन 20 के योग ने नामोनिशान मिटा दिया है। इस वर्ष 9154 हैक्टेयर में राई टाइप 59 की खेती हुई है। इसी प्रकार की स्थिति लगभग मटर के बारे में है। अकिल तथा बोनविलान की खेती में 16000 से अब 21495 हैक्टेयर तक वृद्धि हुई है जिससे किसानों को समृद्ध होने का सुनहरा अवसर मिला है। यह सब इसलिए हुआ है कि कैरेथिन एल० सी० और प्लोनोफिक्स के प्रयोग ने मटर को रोगमुक्त कर अधिक पैदावार के अनुकूल बना दिया है।

अलीगढ़ जनपद ने जहां सब्जी और तिलहन के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है वहां वह उत्तर प्रदेश के गेहूं उत्पादक जिलों में भी इसका स्थान दूसरा है। कुल कृषि क्षेत्र के 196995 हेक्टेयर में गेहूं उत्पादित होता है। यह जनपद गन्ना व कपास में भी पीछे नहीं है। गेहूं के रोग आल्टरनेरिया ब्लाइट को रोकने में डाइथिन जेड 78, एम० 45 तथा जिन्क सल्फेट ने विशेष सफलता प्राप्त की है। गन्ने के उन्नतशील किस्मों के प्रचलन के बाद जो लाल सड़न और पाइरिला भयंकर कीटरोग चले हैं इन्हें बी० एच० सी० गामा मैलाथियन तथा थायोडान ने समाप्त किया। कपास के लगने वाले पत्ती के धब्बे, गुलाबी कीड़ी, जैसिड़ तथा पत्ती लपेटिक कीट रोगों और रोगोर न्यूवान, डाइमोक्रोन, एटेण्टो-साइकिलन, डाइथिन एम० 45 के छिड़काव से हटाया गया है।

अब धान की खेती भी अलीगढ़ जनपद में एक प्रमुख स्थान बना चुकी है। इस वर्ष एक बड़े क्षेत्र में धान की खेती हुई है जिसे किसान ने पंजाब व हरियाणा की भांति खरीफ में विशेष रूप से अपनाया है। धान के कीट रोग खैरा बैक्टीरियल ब्लाइट, ब्लास्ट गंधी सेनिक कीट से बचाव में बी० एच० सी० जिन्क सल्फेट, डाइथिन जैड 78, स्टेप्टो साइकिलन ने विशेष भूमिका निभाई है।

कृषि रक्षा अनुभाग के सहयोग से यहां फल उत्पादन कार्यक्रम ने भी जोर पकड़ा है। आम, अमरूद, पपीता और बेर के बाग अब विशेष रूप से दिखाई देने लगे हैं, जिनकी पैदावार को निर्यात तक किया जाता है। कृषि रक्षा उपायों की इस क्षेत्र में भी धाक है। जहां आम के मिलोबग मैंगोहायर, खर्राकीट रोग पर फेलीडान 2% डस्ट, वासोडीन डाइमोक्रोन, रोगोर प्लोनेफिक्स, केरोसिन-एल० सी० ने विशेष असर किया है।

कृषि रक्षा उपायों को किसान के लिए सुलभ बनाने हेतु उत्तर प्रदेश सरकार प्रतिवर्ष दवाओं पर विशेष छूट देती चली आ रही है। इस वर्ष तिलहन, मटर आदि फसलों पर प्रयोग में आने वाली दवाओं पर 25% की छूट देने की घोषणा की है जिसमें प्रति हेक्टर छिड़काव पर मजदूरी व्यय 50% की छूट भी दवाओं के रूप में देने का प्रावधान किया है। बाढ़ग्रस्त क्षेत्र के सीमान्त व लघु व अन्य कृषकों को क्रमशः तेंतीस तथा 25% का अनुदान के रूप में इस प्रकार की छूट दी गई थी।

रबी की फसल में खरपतवार नाशक रसायन 2—4 डी० सोडियम साल्ट और ट्रिबूनल ने आजकल किसानों के बीच नई लहर दौड़ा दी है, जिससे कम खर्च में खरपतवारों को समाप्त करना अब आसान हो गया है। कृषि रक्षा उपायों के बढ़ते उपयोग से लगता है कि निकट भविष्य में इतने रसायनों की मांग होगी कि उसे पूरा कर पाना कठिन हो जाएगा। कृषि रक्षा विभाग का काम भी कृषि विभाग के प्रमुख कामों में गिना जाने लगेगा। ✱

प्रस्तुतकर्ता
(हुकम सिंह देशराजन)
सदस्य, जिला परिषद् अलीगढ़
कैम्प शंकर धर्मशाला, मदारगेट,
अलीगढ़।

राजभाषाओं का वर्ष

श्री जगन्नाथ

मार्च, 1978 में भारत सरकार की ओर से एक 'अखिल भारतीय राजभाषाओं का सम्मेलन' आयोजित किया गया था जिसमें देश के सभी राज्यों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। इस सम्मेलन ने अनेक सिफारिशें सरकार को दी थीं। उसकी एक सिफारिश यह भी थी कि केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों के कार्यालयों में भारतीय भाषाओं के प्रयोग को बढ़ाने में विशेष चेतना लाने के लिए 'राजभाषाओं का वर्ष' मनाया जाए। उद्देश्य यह था कि इस वर्ष में सभी राज्य सरकारों के तथा केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों में इस बात का गंभीर प्रयत्न हो कि अधिक से अधिक सरकारी कामकाज उनकी अपनी-अपनी राजभाषाओं में हो। फलस्वरूप अब भारत सरकार ने पूरे वर्ष 1979 को 'राजभाषाओं का वर्ष' के रूप में मनाने का निश्चय किया है। इस प्रकार पहली जनवरी से 31 दिसम्बर, 1979 तक की अवधि को सभी सरकारी कार्यालयों के द्वारा 'राजभाषाओं का वर्ष' के रूप में मनाया जाएगा जिसमें अपने-अपने क्षेत्र में राजभाषाओं को सरकारी कामकाज में अधिकाधिक प्रयोग में लाया जाएगा।

जनता का कर्त्तव्य

स्वाभाविक है कि ऐसे पुनीत कार्य में जनता का भी पूरा सहयोग हो। व्यापारी, वकील, वैज्ञानिक, शिक्षक, छात्र सभी इसे सफल बनाने में अपना पूरा-पूरा योगदान दें। भारतवर्ष को स्वाधीन हुए 31 वर्ष की लम्बी अवधि बीत चुकी है। इस अवधि में देश ने अनेक दिशाओं में प्रगति की है। भारतीय भाषाओं का प्रयोग भी इस अवधि में बढ़ा है। किन्तु वह इतना नहीं बढ़ा जितना कि स्वतंत्र राष्ट्र होने के नाते जरूरी था। स्वतंत्र राष्ट्र में विदेशी भाषा का प्रभुत्व केवल हीन भावना का ही प्रतीक है। अतः यह सभी राष्ट्र प्रेमियों का कर्त्तव्य हो जाता है कि वे ऐसा प्रयत्न करें जिससे कि सभी राज्यों में उनकी संबन्धित भाषाओं का सम्मान एवं प्रतिष्ठा बढ़े तथा हिन्दी भाषी राज्यों में और केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों में हिन्दी को वही सम्मान एवं प्रतिष्ठा प्राप्त हो जो किसी भी स्वतंत्र देश की राष्ट्र भाषा के लिए अपेक्षित है। विभिन्न वर्ग हिन्दी का व्यवहार बढ़ाने में किस प्रकार सहयोग दे सकते हैं, इस विषय के कुछ सुझाव निम्न हैं :—

जन-भाषा सेवा संस्थाएं

(1) पहली जनवरी के अवसर पर और बाद में हर दूसरे-तीसरे महीने विशेष कार्यक्रम रखें, जिनमें जनता से स्वदेशी भाषाओं के प्रयोग के लिए अपील की जाए।

(2) स्वदेशी भाषाओं के पक्ष में पोस्टर तथा हैंड-बिल आदि छापे जाएं।

(3) देवनागरी में तार सभी भारतीय भाषाओं में दिए जा सकते हैं और वे सस्ते भी पड़ते हैं। व्यापारिक वर्ग में इस बात का विशेष प्रचार किया जाए।

पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक

(1) अपने अखबारों में जन-भाषाओं के पक्ष में विशेष लेख, कार्टून और कविताएं प्रकाशित करें।

(2) 'सम्पादक का पत्र' कालम में जन-भाषाओं के पक्ष में प्राप्त पत्रों को प्राथमिकता से छापें।

(3) जन-भाषाओं के बारे में प्राप्त समाचार-पत्रों को प्रमुखता दें।

व्यापारी

1. लेटर हैड, कैशमीमों, बिल फार्म, लिफाफे तथा अन्य रजिस्टर आदि हिन्दी में ही बनाएं।

2. सामान पर अपनी दुकान के लेबिल, सामान का विवरण तथा मुहर हिन्दी में लगाएं।

3. नामपट्ट (साइन बोर्ड) हिन्दी में लगाएं। यदि माल निर्माताओं से नामपट्ट आते हैं तो उनसे भी हिन्दी के ही नामपट्ट भेजने का अनुरोध करें।

4. अपना पत्राचार हिन्दी में करें, तार हिन्दी में दें। हिन्दी में तार सस्ते पड़ते हैं।

वैज्ञानिक, शिक्षक, वकील एवं छात्र

1. हिन्दी के पत्र-पत्रिकाओं का अधिकाधिक प्रयोग करें।

2. तकनीकी तथा अन्य विषयों से संबंधित लेख हिन्दी में लिखें।

3. अपने शोध-कार्य जनता को अवगत कराने के लिए उस पर निबंध हिन्दी में लिखें।

4. अन्य भाषाओं में प्रकाशित ऐसे निबंधों का, जिनसे जनता का लाभ हो सके, हिन्दी में अनुवाद करें।

5. अपने शिक्षणालय के कामकाज में हिन्दी का प्रयोग करें।

6. कचहरियों में मामलों पर बहस हिन्दी में करें।

सरकारी कर्मचारियों से निवेदन

1. आप जनता के सेवक हैं और आपकी हर बात जनता तक पहुंच सके इसके लिए यह जरूरी है कि यदि आप राज्य सरकार के कर्मचारी हैं तो संबंधित राज्य की भाषा में और यदि केन्द्रीय सरकार के कर्मचारी हैं तो हिन्दी भाषा में अपना सन्देश जनता तक पहुंचाएं। सरकारी कामकाज में यथासंभव नियमानुसार हिन्दी का प्रयोग करें।

2. सरकार के राजभाषाओं के प्रयोग से संबंधित सभी आदेशों का ईमानदारी से पालन करें।

3. दूसरों को प्रेरित करने के लिए स्वयं का उदाहरण प्रस्तुत करें।

आप सभी से

जीवन में कृत्रिमता न लाएं। विदेशी भाषा का प्रयोग करने मात्र से आप समाज में प्रतिष्ठा अर्जित नहीं कर सकते। स्वतन्त्र राष्ट्र का नागरिक अपनी और समाज की उन्नति निःसन्देह अपनी ही भाषा से कर सकता है।

इस प्रकार भारतीय भाषाओं के प्रयोग को बढ़ावा देने में सरकार और जनता के परस्पर सहयोग से एक ऐसे वातावरण का निर्माण होगा जिसके फलस्वरूप हम वर्ष 1980 से भारतीय भाषाओं का समुचित प्रयोग देख सकेंगे। ❋

श्री जगन्नाथ, महामंत्री, केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद, सरोजिनी नगर, नई दिल्ली-110023

होली का सही अर्थ

अतुल गोस्वामी

अगर चाहते हो
अपने ढंग का, अपने मन का
मनाना होली
तो — पहले
भ्रष्टाचार, व्यभिचार
लोलुपता, कामुकता
डाह- द्वेष - छल - प्रपंच
क्रोध-लोभ-दम्भ-मोह
तथा
हिंसात्मक प्रवृत्ति जैसे दुर्व्यसनों की
विध्वंसात्मक मनोवृत्ति जैसे दुर्गुणों की
बहुत-सी लकड़ियां
एकत्रित कर
खोर-खोर कर
होलिका जलाइए
घृणा को समिधा बनाइए
और तब
मनाइए होली
उड़ाइए अबीर
पकाइये रंगों की खिचड़ी
अपने पड़ोसियों, अन्तरंग मित्रों
एवं
कुटुम्ब परिवारों के साथ
तभी
सत्य अहिंसा की। सच्ची मानवता की
बिखरेगी रोली
जमेगी होली।

अतुल गोस्वामी
जनप्रिय पुस्तक मंदिर,
हरियाणा रोडवेज बस अड्डा
बल्लभगढ़-121004।

स्वाभिमानी हूं

❋ रमेश चन्द्र कौशिक

स्वाभिमानी हूं,
और
प्रेमी भी हूं मैं मानवता का
मैं पुजारी हूं
सत्यता का
पक्षपाती हूं
निज लक्ष्य पाने के लिए
चाहे हो कुछ भी
साधना का
मैं पुजारी, पक्षपाती और प्रेमी हूं
सद्भावना का।
मैंने देखा है
भंवर में डूबती नैया को अक्सर
और देखा
स्वाभिमानी पुरुष को
निज लक्ष्य पाने की मधुर आशा के आलिंगन में
अविरत भार से सटके हुए
और हड़बड़ाए से
कुचक्र में फंसे
निज प्राण देते
अन्त की अवहेलना में लीन
निश्चल भाव से
खाते हुए
पानी की दीवारों के थप्पड़॥
आस्था का सृजन होते देखा है मैंने
नव अकुरों की भांति
रेगिस्तान में भी
और सुना है राजस्थानी
वीर, योधा
रहे लड़ते और घबराए नहीं
मृत्यु के आलिंगन में भी स्थित
हड़बड़ाए से कुचक्र में फंसे
बलिदान देते
अन्त की अवहेलना में व्यस्त
निश्छल भाव से
लेते हुए
दुश्मन की तलवारों से टक्कर॥
स्वाभिमानी हूं,
मानवता के भरन हेतु,
आस्था का।

—ई० 77, मानसरोवर पार्क
शाहदरा, दिल्ली-110032।

गांवों के लोगों को नई स्वास्थ्य सुविधाएं *

* पा० आर० कृष्णमूर्ति

स्वस्थ रहने की इच्छा प्रत्येक व्यक्ति की होती है। मगर इसके लिए लोग ठोस रूप से कार्य तभी करते हैं जब वे अस्वस्थ हो जाते हैं। स्वस्थ होने का अर्थ है शारीरिक, मानसिक और सामाजिक-स्वास्थ्य की स्थिति पूरी तौर से ठीक होना न कि केवल किसी प्रकार की बीमारी या अशक्तता मात्र का न होना। प्राचीन भारतीय विद्वानों ने हमें प्रकृति के साथ संतुलन बनाने व बीमारियों को दूर रखने के बारे में बताया है।

1947 में स्वतन्त्रता के बाद से आधुनिक भारत में चिकित्सा कालेजों और अस्पतालों की संख्या में वृद्धि हुई है। पर स्वास्थ्य शिक्षा के महत्व पर जोर कम दिया जाने लगा। ग्रामीण क्षेत्रों में बसे लाखों लोगों की देख-रेख के लिए पिछले 26 वर्षों में क्रमशः 5400 और 38,000 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों और उप-केन्द्रों की एक शृंखला तैयार की गई। दोनों, पुरुषों और महिलाओं की आयु में तेजी से वृद्धि हुई है और जच्चा-बच्चा की मृत्यु में थोड़ी मगर महत्व-पूर्ण कमी आई। वैसे विभिन्न बीमारियों के कारण हम अस्वस्थता से निरन्तर ग्रस्त रहे।

स्वतन्त्रता से पूर्व मलेरिया, चेचक, कुष्ठरोग, क्षय रोग आदि संक्रामक रोगों की काली छाया पूरे देश में व्याप्त थी। स्वतन्त्रता के बाद इनसे निपटने के लिए कई कार्यक्रम तैयार किए गए। चेचक का उन्मूलन करने में हम सफल रहे हैं और अन्य बीमारियां नियन्त्रण में हैं। वैसे हमारी जनसंख्या, इन बीमारियों से ज्यादा, ऐसे आम रोगों से पीड़ित है जिन्हें बड़ी आसानी से दूर किया जा सकता है। अगर हम बच्चों और प्रौढ़ों में खाने-पीने, सोने आदि के सम्बन्ध में शारीरिक स्वच्छता, आदि की अच्छी आदतें पैदा कर सकें तो लोगों के स्वास्थ्य स्तर में सुधार होगा।

सामाजिक विकास और सामाजिक न्याय की भावना के एक भाग के रूप में हमें निकट भविष्य में ही देश भर में स्वास्थ्य स्तर के अनुरूप लक्ष्य को प्राप्त करना होगा। जिन लोगों को सुविधाएं प्राप्त नहीं हैं उन्हें विशेष रूप से परम्परागत स्वास्थ्य चिकित्सा उपलब्ध करानी होगी। लोगों को घर पर ही सरल और प्राथमिक स्वास्थ्य चिकित्सा उपलब्ध कराने के लिए एक नई कार्यनीति की आवश्यकता है।

किसी भी देश का सबसे महत्वपूर्ण साधन लोग होते हैं और ज्यादातर इस साधन का लाभ नहीं उठाया जाता है। सभी उपलब्ध साधनों के प्रयोग की आवश्यकता है इसलिए स्वास्थ्य के क्षेत्र में समस्याएं सुलझाने की सामर्थ्य को संगठित करना होगा। यह तभी संभव होगा जब व्यक्ति और परिवार अपने स्वयं के स्वास्थ्य के लिए अधिक उत्तरदायित्व स्वीकार करें। अपनी खुद की स्वास्थ्य समस्याएं सुलझाने में सक्रिय रुचि लेना सामाजिक जागरूकता और आत्म-निर्भरता का स्पष्ट प्रमाण होगा। इस प्रकार के कार्यों में रुचि लेकर वे स्वास्थ्य दल के पूरे सदस्य बन जाएंगे।

जैसा कि विकास के समय अन्य क्षेत्र में होता है वैसा ही परिवार कल्याण सहित स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी है कि जनसंख्या के इस भाग के स्वस्थ रहने की कुंजी और दक्षता की जानकारी देना सफलता का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। इसके अलावा, स्वास्थ्य प्रणाली के लाभ के प्रति न केवल उनमें जागरूकता आएगी बल्कि लोग अपनी वास्तविक आवश्यकताओं के अनुरूप स्वास्थ्य प्रणाली अपनाने के लिए इसमें परिवर्तन की मांग भी कर सकते हैं।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, हमने प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों और उप-केन्द्रों, तालुका अस्पतालों, जिला और चिकित्सा कालेज हस्पतालों का जाल बिछाया हुआ है, मगर हम अभी तक लोगों को स्वयं के स्वास्थ्य की देखभाल के लिए सक्रिय रूप से इस काम में शामिल नहीं कर पाए हैं। सरकार ने पिछले वर्ष एक योजना तैयार की थी जो समाज के सभी सदस्यों के सहयोग के सिद्धान्त पर आधारित है। इस योजना के अन्तर्गत लगभग 1000 की जनसंख्या (एक गांव के आकार के लगभग) में से एक व्यक्ति को चुनकर उसे गांवों में सामान्य रूप से पाए जाने वाली आम बीमारियों के उपचार, रोग विरोधी उपायों तथा स्वास्थ्य की देखभाल के बारे में प्रशिक्षित किया जाता है। इस काम के लिए चुने हुए व्यक्ति को समाज का विश्वास प्राप्त होना चाहिए। बीमार के प्रति उसमें करुणा की भावना होनी चाहिए। उसे समाज के लिए सामाजिक कार्य करने के लिए कुछ समय लगाने के लिए तैयार रहना चाहिए और उसमें स्वास्थ्य चिकित्सा की सरल तकनीक और दक्षता ग्रहण करने की क्षमता होनी चाहिए।

इन कार्यकर्ताओं को 3 महीने की अवधि में 200 घण्टों के प्रशिक्षण के बाद एक किट, एक छोटी नियम पुस्तिका और प्रति मास 50 रु० मूल्य की दवाइयां दी जाती हैं। इसके अलावा, प्रतिमास 50 रु० की मानदेय राशि भी दी जाती है। इस योजना के बारे में विभिन्न राज्यों के स्वास्थ्य अधिकारियों से विचार-विमर्श किया गया और यह 2 अक्तूबर, 1977 से लागू कर दी गई। अब तक 42,000 कार्यकर्ताओं के लगभग 3 दलों को प्रशिक्षण दिया जा चुका है और 14,000 के चौथे दल को प्रशिक्षण दिया जा रहा है। तामिलनाडु, केरल और कर्नाटक ने इस योजना को स्वीकार नहीं किया है और जम्मू व कश्मीर राज्य प्राथमिक स्कूल के अध्यापकों की सहायता से अपनी इस अलग योजना का प्रयोग कर रहा है। अन्य सभी राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों ने इसे स्वीकार किया है और वे इसे लागू कर रहे हैं।

यह प्रथम अवसर है जबकि समाज को इस काम में लगाने के लिए बड़े पैमाने पर प्रयत्न किए गए। योजना का मूल्यांकन भी 6 राष्ट्रीय संस्थानों द्वारा मिलकर किया गया है। ये संस्थान हैं :– राष्ट्रीय स्वास्थ्य और परिवार कल्याण संस्थान, भारतीय प्रबन्ध संस्थान, अहमदाबाद, भारतीय चिकित्सा अनुसन्धान परिषद्, नई दिल्ली, अखिल भारतीय आरोग्यशास्त्र और जन स्वास्थ्य संस्थान, कलकत्ता, अन्तर्राष्ट्रीय जनसंख्या अध्ययन संस्थान, बम्बई और गांधीग्राम ग्रामीण स्वास्थ्य संस्थान, मदुरै। आर्थिक विकास संस्थान ने पंजाब और हरियाणा में पांच प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों का एक स्वतन्त्र अध्ययन भी किया। इन अध्ययनों से पता चला कि लोगों ने इस योजना का स्वागत किया है। पहले दो तीन दलों को प्रशिक्षण सम्बन्धी सामग्री, छोटी नियम पुस्तिका, किट और दवाइयों की सप्लाई सम्बन्धी छोटी-मोटी समस्याओं का सामना भी करना पड़ा। अब इनको दूर कर दिया गया है। छोटी नियम पुस्तिका हिन्दी, तमिल, तेलगू, उड़िया, बंगला, मिजो, असमी, नेपाली, गुजराती, मराठी और पंजाबी में छपाई गई है।

ऐसा सोचा गया है कि प्रशिक्षण के प्रथम चरण में प्रशिक्षार्थियों को चिकित्सा आदि आम बातें सिखाने के बाद उन्हें पुनराभ्यास पाठ्यक्रम भी पढ़ाया जाएगा जिससे कि सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता को धीरे-धीरे करके और अधिक दक्ष बनाया जा सके। तब वह समाज में परिवर्तन लाने वाले ऐसे प्रतिनिधि के रूप में काम कर सकता है जो स्वास्थ्य के नकारात्मक पहलुओं के प्रति समाज में जागरूकता पैदा कर सके।

इस योजना की सफलता के लिए कई बातें जरूरी हैं। यह बहुत जरूरी है कि लोग यह महसूस करें कि स्वास्थ्य स्तर में ये परिवर्तन, उनकी इच्छा और न्यूनतम निवेश तथा गांव स्तर पर उपलब्ध सरल प्रौद्योगिकी द्वारा लाए जा सकते हैं। यह भी महत्वपूर्ण है कि वे यह महसूस करें कि सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता के रूप में चुना जाने वाला व्यक्ति सरकारी कर्मचारी नहीं, बल्कि उन्हीं में से एक है जो उनकी आवश्यकता के अनुसार ही काम करेगा। इसलिए उनके लिए यह आवश्यक है कि वे समुचित योग्यता रखने वाले व्यक्ति को चुनें। योजना में यह परिकल्पना की गई है कि समाज सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता के काम का निरीक्षण करेगा। इस व्यवस्था को एक सरकारी कर्मचारी के काम के निरीक्षण के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए, बल्कि इसे सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता की भूमिका को समझकर और क्या उस व्यक्ति ने अपनी भूमिका ठीक प्रकार से निभाई है, यह मूल्यांकन करके किया जाना चाहिए। इसलिए न केवल इस योजना की सफलता के लिए बल्कि स्वास्थ्य स्तर में परिवर्तन करने के लिए भी सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता का चयन एक महत्वपूर्ण अंग है। प्रशिक्षण, छोटी नियम पुस्तिका, किट, दवाइयां आदि योजना के अन्य सभी पहलू गौण हैं। अगर समाज को उसकी स्वयं की योग्यताओं के विषय में जागरूक बना देना सम्भव हो जाए तो परिवर्तन अपने आप होंगे।

कुछ चिकित्सक संघों ने, इस आधार पर इसका विरोध किया कि इस योजना से और अधिक नीम हकीम पैदा होंगे। यह डर निराधार है। नीम हकीम इस कारण जन्म नहीं लेते कि एक व्यक्ति को प्रशिक्षित किया गया बल्कि इनके जन्म लेने के कारण तो समाज में व्याप्त शून्यता और हमारे लोगों में व्याप्त अज्ञानता का लाभ उठाना है। सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं का काम लोगों को स्वास्थ्य सम्बन्धी शिक्षा देना है। अगर वह उसको दिए प्रशिक्षण की परिधि के अन्दर ही काम करता है तो वह समाज के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकेगा। रोग प्रतिबन्धक पक्ष और स्वास्थ्य शिक्षा में प्रोत्साहक मूल्यों को अच्छी तरह समझने के बारे में गांवों के लोगों को भी बताया जा सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि काम के इस पहलू को केवल व्यावसायिक लोग ही करें। काफी सीमा तक हमें सह-व्यावसायिक लोगों और साधारण कार्यकर्ताओं पर भी निर्भर करना होगा।

जहां तक चिकित्सा पहलू का सम्बन्ध है यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता केवल उन्हीं बीमारियों का इलाज करेंगे जो आसानी से और बिना किसी खतरे के ठीक की जा सकती हैं। सामुदायिक कार्यकर्ताओं को यह सलाह दी गई है कि कोई रोगी निर्धारित समयावधि तक ठीक न हो तो वे उस मामले को योग्य चिकित्सा या सह चिकित्सा कार्यकर्ता को सौंप दें। इसका दुरुपयोग तभी हो सकता है जबकि समाज सतर्क न हो। इसीलिए हम इस बात पर जोर देते हैं कि कार्यकर्ता की भूमिका के विषय में समाज को शिक्षित करना है। ऐसे कार्यकर्ताओं का चयन इस योजना का महत्वपूर्ण अंग है। इस मामले में चिकित्सा व्यवसाय संघ भी हमारी सहायता कर सकते हैं।

स्वयंसेवी संस्थाओं ने ग्रामीण स्वास्थ्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय सेवाएं प्रदान की हैं। उन्होंने तो अनपढ़ कार्यकर्ताओं को भी प्रशिक्षण दिया और उनकी सहायता से ग्रामीण जनता को स्वास्थ्य की प्रारम्भिक जानकारी उपलब्ध कराई। हमें विश्वास है कि इस प्रकार का प्रशंसनीय कार्य लगातार प्रगति करेगा और आवश्यक सामाजिक परिवर्तन के लिए हमें सम्पूर्ण प्रक्रिया की अन्तर्दृष्टि उपलब्ध कराएगा।

स्वास्थ्य, विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू है। समाज की सहायता से विकास के सभी पक्षों में सामाजिक परिवर्तन लाया जा सकता है। जैसा कि सर्वविदित है। इस देश में हरित क्रांति को मजबूती से पांव जमाने में एक दशक लग गया। अगर कृषि उत्पादन में सुधार जैसे क्षेत्रों में, जहां आर्थिक लाभ स्पष्ट होते हैं, महत्वपूर्ण पद्धतियों को स्वीकार करने और अपनाने में ग्रामीण समुदाय को इतना लम्बा समय लग गया, वहां स्वास्थ्य में समाज को शामिल करने के नए प्रयोग के बारे में केवल 9 महीने की अल्पावधि में फैसला देना उचित नहीं होगा। देश में व्याप्त सामाजिक और आर्थिक ढांचे में परिवर्तन के लिए साहसिक और काल्पनिक प्रयत्न करके ही हम प्रगति कर सकते हैं। लोग जब एक बार यह महसूस करेंगे कि ये परिवर्तन उनके हित के लिए है और इसमें उन्हें लाभ मिलेगा तब शायद यह संभव हो सके कि उत्प्रेरक प्रयत्नों से व्यापक और शीघ्र परिवर्तन किए जा सकेंगे। सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता योजना को इसी रूप में लेना चाहिए और हम आशा करते हैं कि इसको लाभप्रद ढंग से लागू करने हेतु बहुमूल्य सुझाव देने के लिए लोग आगे आएंगे।●

ग्राम विकास गतिविधियों का परिवार नियोजन कार्यक्रम के साथ समन्वय

जी. वी. के. राव

बंगलौर में मई, 1978 में स्वास्थ्य तथा परिवार कल्याण मन्त्रालय के साथ जनसंख्या शिक्षा पर राष्ट्रीय कार्यशाला का आयोजन किया गया था। इस की सिफारिशों पर अनुवर्ती कार्यवाही के अंग के रूप में हम महसूस करते हैं कि जनसंख्या शिक्षा को कृषि विस्तार और ग्राम विकास गतिविधियों के साथ समन्वित किया जाना चाहिए। परिवार कल्याण कार्यक्रम के संदर्भ में ग्राम विकास संगठनों की भूमिका की महत्ता समय-समय पर पहले ही स्पष्ट की जा चुकी है। लेकिन राष्ट्रीय जनसंख्या नीति को प्रभावशाली ढंग से कार्यान्वित करने के लिए जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता के बारे में बढ़ती हुई जागरूकता के संदर्भ में इस कार्यक्रम में अपनी भमिका को और सबल बनाना आवश्यक है। अतः यह सोचा गया है कि कृषि विस्तार और ग्राम विकास के कार्यक्रमों में जनसंख्या शिक्षा को उपयुक्त स्थान दिया जाए।

देहाती क्षेत्रों में परिवार कल्याण के चिकित्सा सम्बन्धी पहलुओं की जिम्मेदारी तो स्वास्थ्य और परिवार कल्याण एजेंसियों की है लेकिन जनसंख्या शिक्षा की जिम्मेदारी ग्राम विकास संगठनों की होनी चाहिए। जनसंख्या शिक्षा का सम्बन्ध [शिक्षात्मक और अभिप्रेरणात्मक पहलुओं से है जिनका ब्यौरा नीचे दिया जाता है :—

(1) जनसंख्या की समस्याओं के बारे में जागृति पैदा करना,

(2) छोटे परिवार के सिद्धान्त को अपनाने की आवश्यकता का बोध कराना और

(3) परिवार कल्याण सुविधाओं के बारे में सूचना पहुंचाने की व्यवस्था करना।

अतः, जनसंख्या शिक्षा को ग्राम विस्तार पैकेज सेवाओं का एक हिस्सा होना चाहिए। विस्तार कार्यकर्ताओं, पंचायती राज संस्थाओं महिला-मण्डलों, युवक-मंडलों, सहकारी-समितियों, गांव-विद्यालयों आदि को गांव-विकास और कृषि-विस्तार की एक समन्वित नीति के संदर्भ में छोटे परिवार के सिद्धान्त के संदेश का प्रसार करने में संगठनों के रूप में कार्य करना चाहिए।

स्वास्थ्य तथा परिवार कल्याण मंत्रालय के इन महत्वपूर्ण मसलों पर विचार विमर्श करते समय निम्नलिखित कुछेक विशिष्ठ क्षेत्र जहां प्रभावशाली ढंग से समन्वय किया जा सकता है, उभर कर सामने आए हैं :—

(1) विस्तार कार्यकर्ताओं के पाठ्यक्रमों में संशोधन किया जाना चाहिए ताकि राष्ट्रीय जनसंख्या नीति में स्पष्ट की गई जनसंख्या शिक्षा को पर्याप्त रूप से लाया जा सके और उसकी आवश्यकता पर बल दिया जा सके।

(2) कृषि विस्तार फील्ड कार्यकर्ताओं को ग्राम विकास विभाग द्वारा अंग्रेजी और हिन्दी में प्रकाशित पत्रिका 'कुरुक्षेत्र' और परिवार कल्याण विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित परिवार कल्याण पत्रिका के लिए जनसंख्या शिक्षा और परिवार कल्याण पर कहानियां और लेख भेजने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। इस कार्य के लिए मानदेय देने पर विचार किया जा सकता है।

(3) राज्य के सर्वोत्तम गांव/सर्वोत्तम ग्राम सेविका/सेवक को राष्ट्रीय पुरस्कार देने के लिए महिला-मण्डलों का प्रोत्साहन पुरुस्कारों के लिए चुनाव करने में उनके कार्य को उनके योगदान का मूल्यांकन करने में एक कसौटी रखी जा सकती है।

(4) पंचायतों, महिला-मण्डलों, युवक-क्लबों, सहकारी-समितियों आदि के मंचों का जनसंख्या शिक्षा गतिविधियों के लिए उपयोग किया जा सकता है।

उपर्युक्त सूची तो केवल जनसंख्या शिक्षा के समन्वय के सम्भव क्षेत्रों का उदाहरण मात्र है जिसका बहुत अधिक विस्तार किया जा सकता है। केन्द्र और राज्य योजनाओं में ग्राम विकास और कृषि विस्तार के अन्य बहुत से कार्यक्रम हो सकते हैं जिनका परिवार कल्याण के साथ सम्बन्ध हो सकता है। आशा है कि राज्य सरकार इन योजनाओं की जांच करेगी और इन कार्यक्रमों में आपसी सहयोग और उन्हें सशक्त बनाने के तौर तरीकों पर विचार करेगी। प्रधान मंत्री द्वारा जारी किए गए निदेश के कार्यान्वयन के लिए राज्य परिवार कल्याण विभाग और ग्राम-विकास कार्यकर्ताओं तथा संगठनों के बीच निकट सहयोग अनिवार्य होगा। ✱

सचिव,
ग्रामीण विकास विभाग,
केन्द्रीय कृषि और सिंचाई,
मंत्रालय

आम का

गुच्छा-रोग

राजमणि पाण्डेय और कौशल कुमार मिश्र

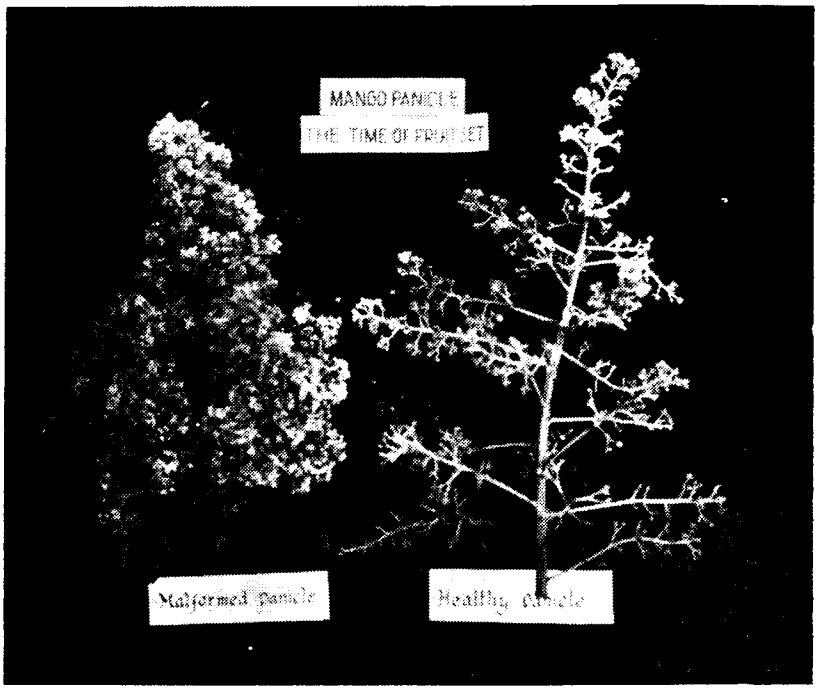

बायें–बीमारी से प्रभावित आम का बौर दायें–स्वस्थ आम का बौर

आम भारत का राष्ट्रीय फल है जो कि अमीरों व ग़रीबों दोनों को आसानी से सुलभ हो जाता है । भारत में आम को फलों का राजा कहते हैं। इसके अन्तर्गत कुल क्षेत्रफल 7.5 लाख हेक्टर और वार्षिक उत्पादन 69 लाख टन है जो कि देश में उगाए जाने वाले समस्त फलों से अधिक है। इतना अधिक क्षेत्रफल और निर्यात की सर्वाधिक सम्भावना होते हुए भी आम की बागवानी उन्नत तरीकों से नहीं की जाती है जो कि बहुत आवश्यक है । आम के बाग से अन्य फलों की अपेक्षा कम आय प्राप्त होती है । इसका औसतन उत्पादन 8–10 टन प्रति हेक्टर है जबकि केला व अंगूर का उत्पादन 20–40 टन प्रति हेक्टर होता है। अतः बागवानों की आम की बागवानी के प्रति कम रुचि होने का मुख्य कारण आम से कम आमदनी प्राप्त होना है । कम उत्पादन का एक मुख्य कारण आम का विकृत या गुच्छा रोग भी है जो कि आम उद्योग के लिए एक बहुत बड़ा खतरा बन गया है।

सर्वप्रथम विकृत रोग को भारत के (दरभंगा) बिहार राज्य में देखा गया था। अब यह सारे देश में फैल चुका है । परन्तु देश के उत्तर-पश्चिम भाग में इसका प्रकोप उत्तर-पूर्व व दक्षिण की अपेक्षा अधिक है । उत्तर प्रदेश का पश्चिमी भाग पूर्वी भाग की अपेक्षा अधिक प्रभावित है। पंजाब राज्य के अर्ध पहाड़ी क्षेत्रों में अन्य भागों की अपेक्षा इसका प्रकोप काफी देखा गया है । केरल राज्य और कन्याकुमारी क्षेत्र इस बीमारी से प्रभावित नहीं हैं। भारत के अतिरिक्त इसका प्रकोप मध्य पूर्व के देशों, पाकिस्तान, दक्षिण अफ्रीका, इज्राइल, मध्य अमेरिका, मेक्सिको और संयुक्त राज्य अमेरिका में भी बताया गया है। बीमारी का प्रकोप पेड़ की उम्र के हिसाब से होता है । ऐसा देखा गया है कि नए पेड़ों में पुराने पेड़ों की अपेक्षा बीमारी का प्रकोप अधिक होता है । बीमारी का प्रकोप मौसम के अनुसार भी घटता-बढ़ता रहता है । उत्तर भारत में बम्बई हेरा जाति इस रोग से बहुत अधिक प्रभावित होती है। दशहरी और चौसा कम तथा लंगड़ा जातियां बहुत कम प्रभावित होती हैं ।

लक्षण : आम का विकृत रोग दो प्रकार का होता है ।

1. वानस्पतिक विकृत रोग
2. पुष्पक्रम विकृत रोग

वानस्पतिक विकृत रोग : इस प्रकार के रोग में पौधे या पेड़ की नई शाखाओं की अग्रस्थ प्रभाविकता समाप्त हो जाती है । फलस्वरूप शीर्ष पर अनेक छोटे-छोटे प्ररोह निकलते हैं जिनकी पोरी छोटी होती है । ऐसे प्ररोहों में सामान्यतः छोटी-छोटी पत्तियां निकलती हैं और शीर्ष भाग एक दम गुच्छे का रूप धारण कर लेता है । (चित्र 1) यह लक्षण छोटे पौधों में अधिक पाया जाता है । फलस्वरूप पौधशाला में प्रभावित पौधे मर जाते हैं। यदि प्रभावित पौधे न भी मरें तो उनकी वृद्धि बहुत कम हो जाती है। प्रभावित प्रशाखा की पत्तियां पीली पड़ जाती हैं। ऐसी शाखाओं में यद्यपि फल देने वाली कलिकाएं बनती हैं परन्तु उनमें कभी भी सामान्य फल व फूल नहीं आते हैं। इस रोग को शाखागुच्छा रोग भी कहते हैं।

पुष्पक्रम विकृत रोग : इस रोग में पुष्पक्रम विकृत हो जाता है । प्रभावित पुष्पक्रम (मंजरी) की यह मुख्य रेकिस (Rachis) मोटी हो जाती है। इनकी प्राथमिक व द्वितीय शाखाएं छोटी हो जाती हैं । फलस्वरूप पुष्पक्रम गुच्छों का रूप धारण कर लेते हैं । प्रभावित पुष्पक्रम के फूल सामान्य पुष्पक्रम से बड़े और अधिकांशतः नर होते हैं। प्रभावित पुष्पक्रम शायद ही कभी फलता हो और अन्त में सूख जाता है। बाद में ऐसे पुष्पक्रम महीनों तक काले सूखे हुए उत्तकों के साथ लटके रहते हैं । स्वस्थ और विकृत पुष्पक्रम एक शाखा पर साथ-साथ देखे जा सकते हैं। विकृत शाखा पर निकली हुई

सभी प्रशाखाएं विकृत पुष्प क्रम पैदा नहीं करती हैं और विकृत पुष्पक्रम की भी द्वितीय शाखाएं सामान्य हो सकती हैं। कभी-कभी प्रभावित शाखा की वानस्पतिक कलिकाएं फूल जाती हैं। और उनकी पौरी छोटी हो जाती हैं। प्रभावित पुष्पक्रम तीन प्रकार के देखे गए हैं: भारी, मध्यम और हल्के। भारी पुष्पक्रम बहुत टोस (Compact) होते हैं क्योंकि इनमें पुष्प बहुत अधिक होते हैं। मध्यम पुष्पक्रम कम ठोस होते हैं। हल्के पुष्पक्रमों को पहचानना कठिन है क्योंकि ये बहुत कम ठोस होते हैं। प्रथम दो तरह के पुष्पक्रम पेड़ों पर काफी समय तक लटकते रहते हैं। कभी-कभी प्रभावित पुष्पक्रम बहुत अधिक संख्या में छोटी-छोटी पत्तियाँ पैदा करते हैं। प्रभावित और सामान्य पुष्पक्रमों की पहचान द्विलिंगी पुष्पों की संख्या से भी की जा सकती है। सामान्य पुष्पक्रमों में प्रभावित पुष्पक्रमों की अपेक्षा द्विलिंगी पुष्पों की संख्या अधिक होती है।

दशहरी, चौसा और लंगड़ा जातियों के प्रभावित पुष्पक्रमों में फल नहीं बनते हैं परन्तु बम्बई हरा जाति के हल्के प्रभावित पुष्पक्रमों से कुछ फल प्राप्त हो जाते हैं। प्रभावित पुष्पक्रमों की कोशिकाएं विकृत हो जाती हैं तथा स्टार्च से भर जाती हैं। प्रभावित और सामान्य पुष्पक्रम के मुख्य रेकिस में भी आन्तरिक अन्तर पाया जाता है। कोशिकाएं प्रभावित मंजरी में डेढ़ गुना कम हो जाती हैं और कोशिकाओं का आकार बढ़ जाता है।

कारण: यद्यपि विकृत रोग हमारे देश में बहुत समय से व्याप्त है परन्तु यह किस कारण से होता है अभी तक ठीक से पता नहीं चल पाया है। बीमारी के कारण का विषय विवादास्पद है और वैज्ञानिकों के अलग-अलग विचार हैं। बीमारी को कवक, विषाणु, माइट कीटों और कार्यकीय कारणों द्वारा हुआ समझा जाता है।

1. **कवकीय कारण**—इस समूह के वैज्ञानिकों के विचार से रोग का मुख्य कारण फ्यूजोरियम मोन्लीफामी नामक कवक हैं। इन वैज्ञानिकों ने शाखा विकृत रोग को नियंत्रित दशा में पैदा भी कर दिखाया है। पन्तनगर से फ्यूजोरियम आक्सीस्पोरम नामक कवक को प्रभावित शाखा व पुष्पक्रम में देखा गया है। नियंत्रित दशा में इस कवक से शाखा गुच्छा रोग तो कुछ पौधों में पैदा किया जा चुका है परन्तु पुष्पक्रम गुच्छा रोग के पैदा करने में अभी सफलता नहीं मिली है।
2. **विषाणु जन्य रोग**—बहुत से वैज्ञानिक इस रोग को इस दिशा में अध्ययन करने में प्रयत्नशील रहे हैं और इनके अनुसार बीमारी का मुख्य कारण विषाणु है। परन्तु ये लोग बीमारी को स्वस्थ पेड़ों में किसी भी प्रकार से स्थानान्तरित करने में असफल रहे हैं।
3. **माइट कीट**—बहुत से वैज्ञानिकों ने माइट कीट की विभिन्न प्रजातियों की संख्या को बीमारी से सम्बन्धित होने का अध्ययन किया है। इनके अनुसार एसेरिया मन्जीफेरी, चिलटोजीनीज ओरनेटस, टायफेलड्रोमस रेनेनस, टाया रोशेनलाली, टायनेसबीटी, टाय, एसियोटिकस और टाय, कस्टीसेनी माइट प्रमुख हैं। ये वैज्ञानिक बीमारी को माइट द्वारा पैद करने या माइट की संख्या को कम करके बीमारी को कम करने में असफल रहे हैं।
4. **कार्यकीय**—इस दिशा में कुछ वैज्ञानिकों ने सराहनीय कार्य किया है पर अभी तक बीमारी के सही कारण का पता नहीं चल पाया है। कुछ लोगों के अनुसार विकृत रोग अधिक मृदा नमी के कारण होता है परन्तु यह अभी तक सिद्ध नहीं हो पाया है। कुछ लोगों ने पत्तियों व पुष्पक्रमों का मुख्य तथा सूक्ष्म तत्वों के लिए विश्लेषण किया है परन्तु दोनों तरह के भागों में कोई अन्तर नहीं पाया है। प्रभावित पुष्पक्रमों में कार्बोज की मात्रा अधिक पाई गई है। इसी तरह प्रभावित मंजरियों की शाखाओं में भी उपरोक्त

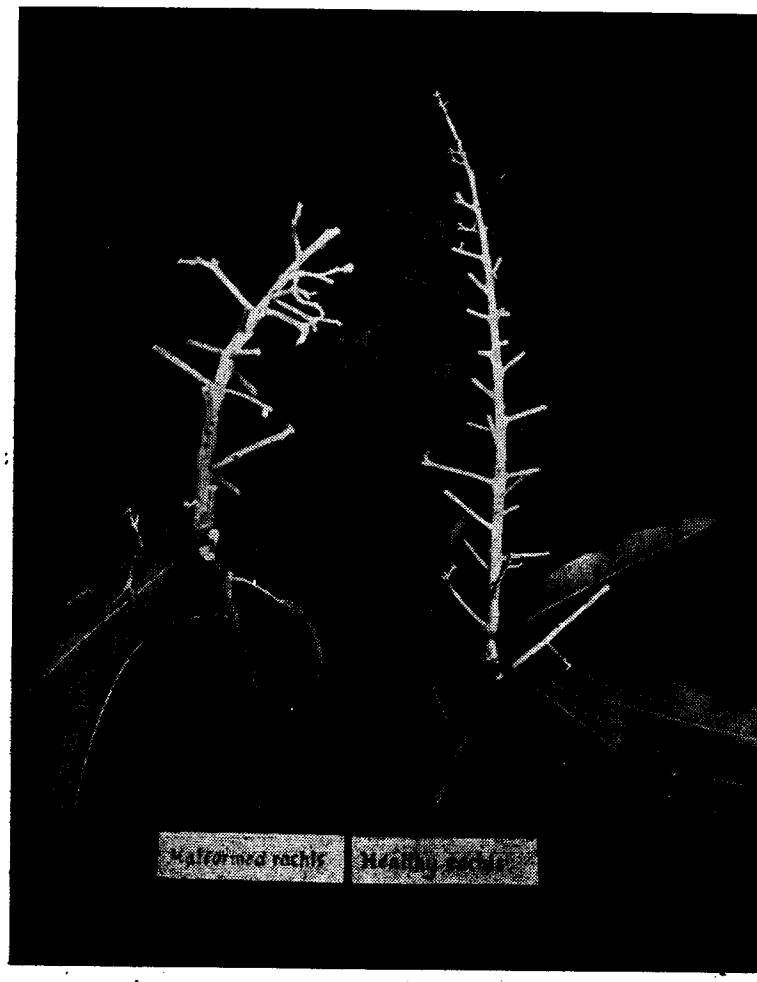

बायें–बीमारी से प्रभावित रेकिस, दायें–स्वस्थ रेकिस

बायें– बीमारी से प्रभावित शाखा, दायें– स्वस्थ शाखा

पदार्थ की मात्रा अधिक पाई गई है । डीआक्सीरइबो न्यूक्लिक अम्ल और राइबोआक्सी न्यूक्लिक अम्ल की मात्रा प्रभावित मंजरियों में कम पाई गई है। कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार बीमारी का प्रमुख कारण पुष्प कलिकाएं बनते समय आक्सिन व आक्सिन विरोधी पदार्थों का असन्तुलन है । आक्सिन के चारों घटकों जैसे मुक्त उदासीन (Free neutral) बाउन्ड उदासीन (Bound neutral), मुक्त अम्लीय (Free acidic), और बाउन्ड अम्लीय (Bound acidic) की मात्रा स्वस्थ मंजरियों में अधिक पाई गई है तथा निरोधक तत्वों (Inhabitors) का स्तर विपरीत रहा । उपरोक्त परिणाम यह दिखाते हैं कि विकृत रोग आक्सिन के बाहरी उपचार से नियंत्रित किया जा सकता है । वृद्धि निरोधक और वृद्धि करने वाले तत्वों के असंतुलन की वजह से ही अग्रस्थ प्रभाविकता कम हो जाती है । फलस्वरूप मंजरी विकृत हो जाती है । उपरोक्त परिकल्पना इससे और भी सिद्ध हो जाती है कि 200 भाग नेफथलीन एसिटिक अम्ल (एन० ए० ए०) प्रति 10 लाख भाग पानी में मिलाकर पुष्पकलिकाएं बनने के पूर्व छिड़काव करने से विकृत रोग का आक्रमण बहुत कम हो जाता है । इन्डोल एसिटिक अम्ल आक्सीडेज इन्जाइम भी प्रभावित उत्तकों में ज्यादा पाया गया है । इससे इस पदार्थ की मात्रा कम हो जाती होगी और विकृत रोग हो जाता है ।

नियंत्रण के उपाय––यद्यपि समय-समय पर बहुत से नियंत्रक उपाय सुझाए गए हैं परन्तु हम अभी भी रोग को समाप्त करने में सफल नहीं हो पाए हैं। रोग की रोक-थाम के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिए :––

1. जिन क्षेत्रों में माइट कीट का प्रकोप हो उनको नष्ट करने के लिए एफीडान, क्लोरोडेन, डायजिनान, डायमल्फोटान इमल्सन और अल्डी कार्ब रसायनों का प्रयोग किया जा सकता है । परन्तु माइट कीट के नियंत्रण से बीमारी की रोकथाम बहुत कम होती है ।
2. प्रभावित भागों को 30 से० मी० नीचे से काट कर निकाल देना चाहिए और कटे हुए भाग पर दो भाग ताम्रयुक्त कवकनाशक पदार्थ और एक भाग चने को 30 भाग पानी में मिलाकर लेप कर देना चाहिए । इसके बाद 0.03 प्रतिशत डायजिनान का छिड़काव करना चाहिए ।
3. पुष्पकलिकाएं बनने से पहले 200 भाग अल्फा नेफथलीन एसिटिक अम्ल प्रति 10 लाख भाग पानी में घोलकर छिड़काव करने से प्रभावित मंजरियों में फल बनने और उपज में वृद्धि हो जाती है। उत्तरी भारत में छिड़काव का उचित समय अक्तूबर का प्रथम सप्ताह है ।
4. भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान में किए गए प्रयोगों से दिसम्बर के अन्तिम और जनवरी के प्रथम सप्ताह में निकलने वाली मंजरियों को जब दो एक या दो से० मी० लम्बी हो जाएं तोड़ देने से उपज में काफी वृद्धि पाई गई है। इस प्रकार एन० ए० ए० का छिड़काव तथा मंजरियों का तोड़ना इन दोनों क्रियाओं को संयुक्त रूप से करने से रोग-ग्रसित पेड़ों की उपज और भी बढ़ जाती है ।

उद्यान विज्ञान
विभाग, गो. ब. पंत
कृषि एवं प्रा० विश्व विद्यालय
पन्त नगर, नैनीताल ।

वर्तमान पता: वैज्ञानिक (3) (पादप कायिकी) उद्यान विज्ञान विभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली ।

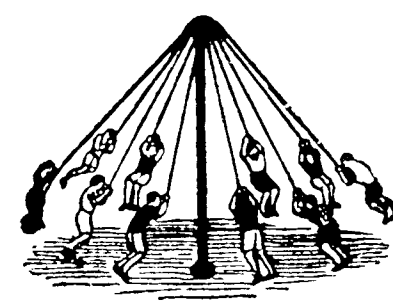

उत्तर प्रदेश में

कालीन उद्योग के

बढ़ते चरण

रवीन्द्र कुमार सिंह

हमारी वर्तमान सरकार की नीति लघु उद्योगों व ग्रामीण उद्योगों को बढ़ावा देना है जिससे गरीबी और बेरोजगारी दूर हो सके। इस संदर्भ में कालीन-उद्योग एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। पूंजी विनियोग एवं रोजगार की दृष्टि से भी इस उद्योग का विशेष स्थान है। उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर भदोही क्षेत्र में इस उद्योग का उत्पादन देश के अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा सबसे अधिक है। भारत में कालीन की बुनाई मुगल-काल (16वीं शताब्दी) में प्रारम्भ हुई। फारसी कालीन की उत्कृष्टता से आकृष्ट होकर मुगल सम्राट अकबर ने कुछ फारसी बुनकरों को भारत बुलवाया और लाहौर में कालीन बनाने का एक कारखाना स्थापित कराया था।

18वीं शताब्दी में ईस्ट इंडिया कंपनी ने, जब भारत में व्यापार प्रारम्भ किया तो उस समय कालीनों की बुनाई का कार्य हमारे देश में तेजी पकड़ रहा था। राबर्ट क्लाइव ने कालीन के कुछ सुन्दर नमूने खरीद कर इंगलैंड भेजे थे। कुछ फारसी बुनकर, जो प्रारम्भ में आगरा तथा उसके आसपास बस गए थे, वहां से चल कर बनारस के माधोसिंह घोसिया में आकर बस गए। इन बुनकरों ने महाराजा बनारस से कालीन बुनने की स्वीकृति ली और बुनाई का कार्य प्रारम्भ कर दिया। तभी से माधोसिंह घोसिया (मिर्जापुर) कालीन बनाने का केन्द्र बन गया। आगे चलकर कालीन उद्योग उत्तर भारत से चल कर दक्षिण भारत में भी पहुंच गया। परन्तु दक्षिण भारत में यह उद्योग अधिक न पनप सका। यह कहना असंगत न होगा कि देश के कालीन उत्पादन का 90 से 95 प्रतिशत भाग उत्तर भारत में ही तैयार किया जाता है। उत्तर भारत में इसके प्रधान केन्द्र मिर्जापुर, भदोही, आगरा, अमृतसर एवं श्रीनगर हैं।

आधुनिक किस्म के कालीन उद्योग के उत्पादन का सूत्रपात 18वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में हुआ था, जिसके लिए एडगर हिल ने काफी प्रयास किया था। सन् 1896 में मिर्जापुर में ईन हिल एण्ड कम्पनी, सन् 1867 ई० में ए० टेंलीरी एण्ड सन्स प्रा० लि० कम्पनी की स्थापना की गई। मिर्जापुर-भदोही एवं उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में यह उद्योग जोर पकड़ने लगा। कालीन निर्माण की छोटी-छोटी इकाइयां अन्य स्थान-स्थान पर कायम हो गईं।

प्रथम महायुद्ध के बाद भारतीय कालीनों की ख्याति विश्व के विभिन्न बाजारों में फैल गई, यद्यपि विश्व के अनेक देशों में कालीनों का निर्माण होने लगा था, फिर भी भारतीय कालीन जब वहां के बाजारों में पहुंचने लगे तो अपनी विशेषता के कारण व्यापारियों को अधिक आकर्षित करने लगे। बात यह भी थी कि भारत में कालीन हाथ से बुने जाते थे। मानव ही अपनी भावनाओं को मूर्तरूप देने में समर्थ होता है जब कि यह कार्य कलपुर्जों तथा मशीनों से सम्भव नहीं होता। आज अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में मिर्जापुर, भदोही तथा आगरा के बने ऊनी कालीन ही भारतीय कालीनों के नाम से जाने जाते हैं।

चूंकि यहां की जलवायु भेड़ों के लिए अनुकूल होने के कारण यहां लोग भेड़ पाल कर ऊन का उत्पादन करते हैं और इस क्षेत्र की जनसंख्या का अधिक घनत्व होने के कारण यहां पर शक्ति व श्रम उपलब्ध है, इसीलिए मिर्जापुर-भदोही में कालीन उद्योग आसानी से विकसित हो सका है। इस केन्द्र के कालीनों की कीमत भी कम होती है जिससे यहां से निर्यात अधिक होता है।

अठारहवीं शताब्दी में कालीन उद्योग बिखरा हुआ था। उन दिनों लघुस्तर पर छोटी-छोटी आवश्यक वस्तुओं का निर्माण किया जाता था। सन् 1851 ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के द्वारा उच्च कोटि के नमूने विश्व प्रदर्शनी में रखे गए। उस समय भी भदोही कालीनों ने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर ली थी। सन् 1951 ई० में विश्व प्रदर्शनी में इंगलैंड की जनता में मिर्जापुर-भदोही के कालीनों के प्रति अत्यधिक रुचि पैदा हुई। यूरोप की जनता इन कालीनों की सुन्दरता तथा उत्तमता पर इतनी मुग्ध हुई थी कि कुछ लोगों ने इन कालीनों का इंग्लैंड में प्रचार किया।

19वीं शताब्दी के अन्त में कुछ यूरोपीय व्यापारियों ने भी लाभ कमाने की प्रेरणा से इस केन्द्र में पदार्पण किया। मि० टेलरी ने इस केन्द्र का भ्रमण किया तथा सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की जांच की तथा बुनकरों को नई पद्धति एवं कलात्मक ढंग से कालीन बुनने की प्रेरणा दी। 1901 ई० में मि० टेलरी ने इस प्रणाली को बन्द करके करघा प्रणाली का प्रचलन किया। बुनकर ठेके पर कालीन बुनने को तैयार हो गए तथा उत्पादन सम्बन्धी सभी वस्तुएं बुनकरों को दी गईं। इसी योजना से बुनकर एवं कम्पनी दोनों को लाभ हुआ।

कालान्तर में कालीन निर्माण की विभिन्न प्रक्रियाओं में परिवर्तन किया गया। नूतन कलात्मक रचना के साथ-साथ कलात्मक ढंग से रंगाई के विभिन्न ढंग भी अपनाए जाने लगे। इस प्रकार मिर्जापुर-भदोही में उच्चकोटि के कालीनों का उत्पादन होने लगा।

सन् 1911 ई० तक भारतीय कालीनों का एक मात्र विक्रेता ग्रेट ब्रिटेन ही था। इस उद्योग के पूरे उत्पादन का 98 प्रतिशत केवल इंगलैंड को निर्यात किया जाता था। इस समय तक उत्पादन कार्य यूरोपीय फर्मों द्वारा ही होता था। इन

फर्मों की सफलताओं के कारण कुछ देशी निर्माणकर्ताओं ने भी इस उद्योग में पदार्पण किया।

प्रथम महायुद्ध के समय कालीन उद्योग में करघे द्वारा काम बन्द होने लगा था। श्रमिक शहरों को प्रस्थान करने लगे। यह सब यातायात संबंधी कठिनाई व विदेशी मांग में कमी के कारण हुआ।

परन्तु उस समय उद्योग के संचालकों ने समय के महत्व को समझा। उन्होंने बुनकरों एवं जुलाहों को विभिन्न प्रलोभन देकर बुनने के लिए प्रोत्साहित किया। उस समय मि० टेलरी व महाराजा ने भी आर्थिक सहायता प्रदान कर बुनकरों को प्रोत्साहित किया।

युद्ध की समाप्ति ने उद्योगों की प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान किया। इसका कारण यह था कि युद्ध के समय निर्यात अवरुद्ध होने से विदेशों में भारतीय कालीन की पूर्ति प्रायः समाप्त थी। व्यापारी स्टाक समाप्त होने पर माल की पूर्ति न कर सके, अतः ग्राहकों की मांग ने माल की कीमत में वृद्धि उत्पन्न कर दी। काम करने वाले श्रमिकों तथा करघों की संख्या में 50 फीसदी वृद्धि हो गई थी। प्रथम विश्व युद्ध के बाद महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि हमारे सामान अमेरिका में भी जाने लगे तथा कनाडा, आस्ट्रेलिया व अन्य देशों में ऊनी कालीनों का निर्यात किया गया जिससे ब्रिटेन का आयातित हिस्सा 98 फीसदी से घट कर 85 फीसदी रह गया।

इस उद्योग का पतन मन्दी काल में होने लगा। सन 1928–29 ई० में विश्व भर में फैली हुई मन्दी के फलस्वरूप विश्व के सभी उद्योगों की दशा शोचनीय हो गई। इस मन्दी से कालीन उद्योग को बहुत धक्का लगा तथा देश से निर्यातित कालीन की मात्रा में कमी हो गई। सभी उत्पादक हतोत्साहित होने लगे तथा किसी प्रकार उद्योग को जीवित रखा गया।

सन् 1934 ई० में उद्योग में पुनर्जीवन की झलक दिखाई पड़ने लगी तथा धीरे-धीरे उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होती गई। सन् 1938–39 ई० में इसका उत्पादन युद्ध के पूर्व के उत्पादन स्तर से आगे बढ़ गया।

द्वितीय महायुद्ध के समय पुनः उद्योग के संचालन में कठिनाई उत्पन्न हो गई। कच्चे माल की कमी, परिवहन संबंधी कमी ने उद्योग की उन्नति में बाधा उत्पन्न कर दी। युद्ध के पूर्व सन् 1938–40 में निर्यात लगभग 51 लाख पौण्ड का था जो युद्ध के समय दस लाख पौण्ड का कम हो गया था। बुनकरों ने अपनी जीविका के लिए कम्बल बनाना शुरू कर दिया। अतः द्वितीय महायुद्ध के समय इस उद्योग की प्रगति रुक गई परन्तु किसी प्रकार साहसी व्यापारियों द्वारा उद्योग को चालू रखा गया।

इस युद्ध के पश्चात् विभिन्न अवरोधक घटकों का प्रभाव कम हो गया। कच्चे माल की पूर्ति में सुगमता तथा विदेशी मांग में वृद्धि के कारण कालीन उद्योग में नया जीवन आया। सन् 1954 में कालीन निर्माण में आवश्यक कच्चे माल की आपूर्ति को हल किया गया तथा कालीन के प्रकार में गुणात्मक सुधार लाए गए।

प्रथम पंचवर्षीय योजना काल

प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत केन्द्रीय व राज्य सरकारों का उद्देश्य बड़े-बड़े उद्योग धन्धों की स्थापना एवं विकास करना था। इस समय कई बहूद्देश्यीय योजनाएं बनाई गईं। अतः प्रथम योजना काल में कुटीर उद्योगों के विकास पर कोई बल नहीं दिया गया।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना

इस योजना में कालीन उद्योग के विकास पर बल दिया गया। सरकार द्वारा ऊन विकास परिषद् की स्थापना की गई तथा ऊन निर्यात प्रोत्साहन परिषद् का भी गठन किया गया। इन परिषदों के गठन के द्वारा कालीन उद्योग के विकास के लिए विभिन्न सहायता प्रदान की गई। सरकार ने भी कच्चे ऊन में निर्यात पर समय-समय पर नियन्त्रण लगा कर कच्चा माल उपलब्ध कराने की व्यवस्था की तथा कोयले की पूर्ति भी परमिट द्वारा करवाई। इन प्रयत्नों के बावजूद भी उत्पादन की स्थिति में कोई खास सुधार नहीं हो सका।

तृतीय पंचवर्षीय योजना

इस काल में ऊनी कालीन के मुख्य विभिन्न प्रकार पर बल दिया गया। सरकार ने भारतीय मानक संस्थान की स्थापना की तथा गुण चिन्हांकन योजना कार्यान्वित की ताकि उद्योग का स्तर ठीक बना रहे। इस पर भी इस समय तक निर्यात में वृद्धि की प्रवृत्ति न्यून रही।

परन्तु भारतीय रुपये के अवमूल्यन तथा विदेशों में कालीन की कीमतें ऊंची होने के कारण अर्जित की गई मुद्रा की मात्रा बढ़ गई।

इसके पश्चात् सरकार का निरन्तर प्रयास इस उद्योग की उन्नति के लिए हुआ ताकि अधिक से अधिक विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सके। परन्तु सरकार ने इस प्रकार का कोई प्रभावी कदम नहीं उठाया जिसके कारण यह उद्योग वास्तव में उन्नति करता।

आज हमारी नई सरकार ने वास्तव में गरीबी दूर करने के लिए जो बीड़ा उठाया है उसका एक मात्र हथियार लघु उद्योगों को प्रोत्साहन देना है जिसके लिए सभी बैंकों को ऋण देने के लिए आदेश दिए गए हैं तथा निर्यात सुविधा के लिए भी सरकार ने विभिन्न संस्थाएं खोल रखी हैं जिनका हाल ही में प्रभाव यह हुआ है कि विदेशों से इस वर्ष पूर्वापेक्षया सबसे अधिक आर्डर प्राप्त हुए हैं। रूस में भी हमारे कालीनों की मांग दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है।

परन्तु फिर भी अभी कुछ कमियां विद्यमान हैं। विदेशों में नई-नई तकनीकी का विकास हो रहा है परन्तु भारत में वही पुरानी तकनीकी से कालीनों का निर्माण किया जा रहा है। अतः उत्पादन मात्रा में वृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि आधुनिक तकनीकी अपनाई जाए। विभिन्न देशों में ग्राहकों की रुचि एवं फैशन में परिवर्तन की जानकारी तथा विदेशों में भारतीय कालीनों का विज्ञापन अच्छी तरह करना आवश्यक है। उत्पादन की मात्रा को बढ़ाना तथा उत्पादन लागत को घटाना कालीन उद्योग के विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है। ●

पहाड़ों की हरीतिमा को बचाओ

सतीश कुमार जैन

उत्तर प्रदेश के पर्वतीय प्रदेश में वन सम्पदा का विनाश

भारत में विगत शताब्दी में वनों का जितनी तीव्रता से विनाश हुआ है उसे अनेक देशों की तुलना में आश्चर्यजनक ही कहा जाएगा। केवल 1951 से 1975 के मध्य ही अनेक राष्ट्रीय आवश्यकताओं के कारण, जिनमें नदी-घाटी योजनाएं, औद्योगिकरण विस्थापितों के लिए कृषि हेतु भूमि आवंटन सम्मिलित हैं, 41 लाख हैक्टेयर क्षेत्र वनों से निकल गया है। वन क्षेत्रों पर नदी-घाटी योजनाओं एवं कृषि के लिए भूमि प्रदान करने का दबाव अभी भी बना हुआ है। ईंधन एवं घरेलू कार्यों के लिए लकड़ी की पूर्ति के लिए बस्तियों के कारण जो वन उजाड़े जा रहे हैं इससे समस्या और भी अधिक गम्भीर हो गई है। देश में वनों का क्षेत्रफल, अब कुल भूमि का केवल 22.8 प्रतिशत ही रह गया है। भारतीय वन नीति (सन् 1952) के अनुसार देश की कुल भूमि का 33 1/3 प्रतिशत, 60 प्रतिशत पर्वतीय प्रदेशों में तथा 20 प्रतिशत मैदानी भागों में, वनों के अंतर्गत होना चाहिए।

साल दर साल, जब बढ़ती बाढ़ें देश के हरे-भरे अंचलों को बरबाद कर रही हैं और अपार जन हानि के साथ-साथ अरबों रुपयों की फसलों एवं सम्पत्ति को प्रतिवर्ष नष्ट कर रही हैं, हमने वनों और वृक्षों के महत्व पर अधिक गम्भीरता से विचारना प्रारम्भ किया है।

भारत की उत्तर और उत्तर-पूर्वी सीमा पर आच्छादित विस्तृत हिमालय पर्वतमाला में, विशेषकर गढ़वाल एवं उससे ऊपर के क्षेत्र में अनेक नदियों के उद्गम स्थल हैं। इस सम्पूर्ण पर्वतीय प्रदेश में अनेक जलागम क्षेत्र हैं। बर्फ के पिघलने से अथवा वर्षा द्वारा जल जिन स्थानों से नदी में आकर गिरता है उसे क्षेत्र की उस नदी का जलागम क्षेत्र कहते हैं। पर्वतीय ढलानों पर जितनी अधिक सघन वनस्पति होती है, पहाड़ों पर पानी का आघात उतना ही कम होता है तथा जल के साथ उतनी ही कम मिट्टी बह कर नीचे आती है।

पर्वतीय प्रदेशों के निवासियों ने भी ईंधन एवं घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अविवेक से वहां वृक्षों का शनैः-शनैः उन्मूलन किया है अथवा उनको नष्ट किया है। नीलामी के लिए अंकित पेड़ काटने के अतिरिक्त ठेकेदार बड़ी संख्या में अन्य पेड़ भी काट लेते हैं। वृक्षों पर गहरे घाव करके उन्हें गिरने अथवा सूखने के लिए छोड़ देते हैं। इस दोहरी मार से पर्वतों में वनों की दशा निरन्तर शोचनीय होती जा रही है। वृक्षों को काटने के कारण अनेक पर्वत वृक्ष विहीन हो गए हैं। वर्षा का तेज पानी मिट्टी के इन कच्चे नंगे पहाड़ों से करोड़ों मन मिट्टी बहा कर नदियों में ले जाता है। जल की सतह ऊंची हो जाने के कारण हर वर्ष देश के व्यापक क्षेत्र में बाढ़ों का तांडव देखने को मिलता है। गाद मिट्टी के कारण जलाशयों की आयु भी कम होती जा रही है।

पर्वतीय प्रदेशों की अर्थव्यवस्था में वनों की प्रमुख भूमिका है। वहां के अनेक निवासियों के लिए यह उनकी आजीविका के मुख्य साधन हैं। जंगल की लकड़ियां, वहां की मूलाधार हैं। ऊंचे-नीचे प्रदेशों में स्थित होने के कारण, जहां कृषि योग्य उचित एवं आवश्यक भूमि उपलब्ध नहीं है और न ही कोई उद्योग वहां अभी पनपे हैं, वहां पर लोग आजीविका के लिए प्रमुखतया वनों पर ही आश्रित हैं। ठेकेदारों के प्रति जो वनों से प्राप्त आय के मुख्य भाग को हड़प लेते हैं, उन्हें अब काफी रोष है। कुछ क्षेत्रों में चिपको आन्दोलन को वहां स्वयं सेवकों ने काफी सक्रिय किया। वह ठेकेदारों द्वारा वृक्षों को गिराए जाने से बचाने के लिए वृक्षों से चिपक जाते हैं। उनका कहना है कि पर्वतीय प्रदेशों में वृक्षों के गिराए जाने के कारण वहां का प्राकृतिक सौन्दर्य नष्ट हो रहा है। वातावरण सम्बन्धी सन्तुलन में गड़बड़ी उत्पन्न हो रही है। भूक्षरण अधिक तीव्रता से हो रहा है तथा उनकी आर्थिक स्थिति पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। जहां आन्दोलनकारियों को यह समझाया जाता है कि पुराने व काटने के लिए परिपक्व वृक्षों को गिराने से रोकना वैज्ञानिक पद्धति के प्रतिकूल है उससे वे वृक्ष खड़े-खड़े और सूखेंगे तथा उनमें कीड़े आदि लग कर उनका क्षय होगा और इस प्रकार राज्य की आय में बड़ी कमी आएगी तथा ईंधन, भवन-निर्माण, उद्योगों के लिए कच्चे माल आदि की पूर्ति के लिए काष्ठ की कमी आएगी। पर्वतीय प्रदेशों के निवासियों की कठिनाइयों को भी अधिक आत्मीयता से समझा जा रहा है।

देश के अनेक भागों में आयोजित सम्मेलनों में, जिसमें 21 व 22 दिसम्बर, 1977 को नई दिल्ली में हिमालय सेवा संघ द्वारा

आयोजित "वन और हम" सम्मेलन भी सम्मिलित है, प्रधानमंत्री एवं अन्य केन्द्रीय मंत्रियों द्वारा भी ये विचार व्यक्त किए गए थे कि पर्वतीय क्षेत्रों में स्थित वनों का योगक्षेम वहां पर रहने वाले निवासियों में वृक्षों के प्रति प्रेम भाव उत्पन्न करने पर ही आश्रित है। हिमालय पर्वतमाला में वृक्षोन्मूलन की तीव्र गति से चिन्तित होकर प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने कहा था कि वृक्ष विहीन होने से केवल हिमालय ही नंगा नहीं होता है, हिमालय नंगा होता है तो सारा देश नंगा हो जाता है। यही हाल और पहाड़ों का भी है। यदि पर्वत हरे-भरे रहें तो फिर इस देश में समृद्धि की कभी भी कमी नहीं हो सकेगी। अन्यथा एक दिन हमारी समस्त भूमि रेगिस्तान में परिवर्तित हो जाएगी। उनके विचार में भी वनवासियों और वन दोनों का योगक्षेम एक दूसरे पर आश्रित है। वनों की रक्षा जितनी स्वयं उनके अन्दर रहने वाले कर सकते हैं, भारी व्यय करने पर भी राज्य सरकारें उतनी नहीं कर सकतीं।

सहयोग के इस बीज मंत्र ने वन में रहने वालों और वन प्रबन्धकों को निकट लाने में अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया है। वनों से प्राप्त आय का मुख्य भाग ठेकेदारों के पास चला जाता है। जो कुछ मजदूरी वह इन वनवासियों को दे देते हैं उसी पर उन्हें गुजारा करना पड़ता है। केन्द्र सरकार की प्रेरणा पर राज्य सरकारें इस दिशा में प्रयत्नशील हैं कि वानिकी कार्यों में बिचोलिए ठेकेदारों को हटा कर काष्ठ निष्कासन आदि का कार्य विभागीय स्तर पर सीधे मजदूरों द्वारा हो जिससे उन्हें अधिक से अधिक संख्या में और उचित दर पर मजदूरी मिले।

पर्वतीय एवं दूरस्थ वन सम्पदा का उपयोग अभी तक वाह्य क्षेत्र के उद्योगों को विकसित करने में ही किया जा रहा है। इसका आर्थिक फल वहां के निवासियों को बहुत कम मिल पाता है। आवश्यकता इस बात की है कि यातायात, बिजली आदि का विकास कर वन उपज का अधिक उपयोग वहीं पर उद्योगों को स्थापित कर किया जाए। इसमें वहां के निवासियों का आर्थिक कल्याण होगा तथा उनमें वृक्षों के प्रति अधिक प्रेमभाव उत्पन्न होगा।

उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, जम्मू-काश्मीर आदि पर्वतीय क्षेत्रों में पायी जाने वाली लकड़ी के विभिन्न उपयोग हैं। पर्वतीय क्षेत्रों के निवासियों का यह कहना है कि चीड़ के पेड़ से लीसा प्राप्त करने के लिए उन्हें अधिक से अधिक सहयोगी बनाया जाए जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हो।

कुछ विशेषज्ञ तथा पर्वतीय निवासी बांज (ओक) वृक्ष को पर्वतीय प्रदेशों में भक्षरण रोकने के लिए अधिक उपयोगी मानते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि पर्वतीय क्षेत्रों में कागज निर्माण व अन्य उद्योगों के लिए छोटे-बड़े कारखाने स्थापित कर उपलब्ध काष्ठों का यहां भी उपयोग किया जाए जिससे वहां के निवासियों को लाभ पहुंचे। केन्द्रीय-सरकार के अनुरोध पर राज्य सरकारें पर्वतीय क्षेत्रों में रहने वाले व्यक्तियों के आर्थिक कल्याण के लिए अब अधिक प्रयत्नशील हैं। वानिकी कार्यों में ठेकेदारी द्वारा काम को कम किया जा रहा है। कुछ राज्यों में इसे पूर्ण रूपेण समाप्त करने का प्रयास किया जा रहा है। अनेक लघु वन उपजों को वनों से बीनने एवं उन्हें बेचने का अधिकार वनवासियों को दिया जा रहा है जिससे वे रोजी कमा सकें।

केन्द्रीय कृषि मंत्रालय ने पर्वतीय क्षेत्रों में व्यापक रूप से वृक्षारोपण के कार्य को प्रोत्साहित करने के लिए योजनाबद्ध ढंग से कार्य आरम्भ किया है। सामाजिक वानिकी योजना के अन्तर्गत राज्य सरकारों को अनुदान राशि देकर प्रेरित किया जा रहा है कि वह वृक्षों का अधिक से अधिक आरोपण करें। एक अन्य महत्वपूर्ण योजना 'समेकित मृदा एवं जल संरक्षण' के अन्तर्गत यह प्रयत्न किया जा रहा है कि हिमालय के जलागम क्षेत्रों में वृक्षा-रोपण का कार्य समुचित स्तर पर किया जाए, सीढ़ीनुमा खेती द्वारा कृषि विकास किया जाए एवं अच्छे चरागाह उत्पन्न किए जाएं जिससे पहाड़ी चरवाहों द्वारा वन्य वनस्पति को कम से कम हानि पहुंचे। इन खानाबदोश चरवाहों की समस्या पर्वतीय क्षेत्रों में चिंताजनक स्थिति धारण कर चुकी है। इनके विशाल झुंडों में 1000 या इससे भी अधिक तक भेड़-बकरियां होती हैं। शीत ऋतु में यह नीचे उतर आते हैं और बर्फ का प्रकोप समाप्त होने पर फिर ऊपर की ओर बढ़ते रहते हैं। जड़ी-बूटियां एवं वनस्पति इन झुंडों की भेंट चढ़ती जा रही हैं।

विश्व बैंक भी भारत में अधिक वृक्षारोपण के लिए रुचि ले रहा है। उसकी सहायता से कुछ राज्यों में विशाल स्तर पर सामाजिक वानिकी के अन्तर्गत वृक्ष उगाने का विचार है। उत्तर-प्रदेश में विश्व बैंक की सहायता से एक ऐसी योजना पर विचार हो रहा है जिसके अन्तर्गत राज्य में वर्ष 1979-80 से निर्धन व्यक्तियों की लकड़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति करने, भू-क्षरण पर नियंत्रण पाने, वातावरण को संतुलित रखने आदि के लिए विशाल स्तर पर वृक्षारोपण किया जाए। इससे घरेलू कार्यों के लिए ईंधन, मवेशियों के लिए चारे, भवन निर्माण व खेती में प्रयुक्त होने वाले उपकरणों के लिए सस्ती लकड़ी तथा फलों के अतिरिक्त काष्ठ आधा-रित उद्योगों को और अधिक कच्चे माल की पूर्ति भी सम्भव हो सकेगी। इसके अतिरिक्त, विश्व बैंक की सहायता से ही एक ऐसी वृहद समेकित योजना पर भी विचार हो रहा है जिसके अन्तर्गत उत्तर प्रदेश एवं हिमालय प्रदेश के हिमालय क्षेत्र में जल विभाजन प्रबन्ध, जल-प्रवाह नियंत्रण, वृक्षारोपण तथा भूमि उपयोग आयोजन को समुचित रूप से क्रियान्वित किया जा सके।

कुल मिलाकर आवश्यकता है कि ईंधन की बहुत बड़ी कमी की पूर्ति एवं जलागत क्षेत्रों तथा पर्वतों से मिट्टी के कटाव को रोकने के लिए राज्य सरकारों द्वारा वृक्षारोपण, चरागाह विकास तथा भूमि संरक्षण के विशाल कार्यक्रम को क्रियान्वित किया जाए तथा पर्वतीय निवासियों को अधिक से अधिक आर्थिक एवं तकनीकी सहयोग प्रदान कर वास्तविक रूप में उन्हें वृक्षों की रक्षा के प्रति जागरूक किया जाए। यदि पहाड़ नंगे होते रहें और उस के फलस्वरूप जल के साथ करोड़ों मन मिट्टी इन कच्चे पहाड़ों से कटकर नदियों के दामन को भरती रही तो बाढ़ों का रूप उग्र से उग्रतर ही होता रहेगा तथा मौसम पर भी इसका दुष्प्रभाव पड़ेगा। पर्वतीय प्रदेशों का सौन्दर्य मुख्यतया हरे-भरे वृक्षों द्वारा ही है। नंगे पहाड़ क्या आंखों को अच्छे लगते हैं? यह तो हरीतिमा का ही चमत्कार है कि मन मुग्ध होकर पर्वतीय सौन्दर्य में अटका रहता है। ●

13 ई, बेयर्ड रोड,
नई दिल्ली-110001

राजस्थान पूर्ण नशाबन्दी लागू करने की ओर अग्रसर

के० पी० अरोरा

"केवल कानून बना देने से अथवा प्रतिबन्ध लगा देने से मद्यपान की बुराई को नहीं रोका जा सकता, इसके लिए समाज में मद्यपान के विरुद्ध जनमत तैयार करना होगा। साथ ही साथ अवैध रूप से मादक द्रव्यों का धंधा करने वालों से भी कानून की परिधि में निपटना पड़ेगा ताकि वे इस धंधे को छोड़ दें"।

उपरोक्त कथन के अनुरूप ही राजस्थान सरकार मदिरा के चलन व इसके उपयोग के संबंध में उत्पन्न स्थिति तथा काफी वर्षों से इसके कारण पनप रही सामाजिक बुराई से निपटने हेतु पूरी तरह कार्यवाही कर रही है। मद्यपान के दुष्परिणामों के शिकार निम्न आय और मध्यम आय के लोगों की संख्या प्रायः अधिक रहती है, अतः राजस्थान में विगत 10 वर्षों के दौरान विभिन्न चरणों में मद्य निषेध की नीति के अनुसरण में कारगर कदम उठाए गए हैं। इसके साथ-साथ समाज में मद्यपान के विरुद्ध तैयार करने वाली समाज सेवी संस्थाओं को भी प्रोत्साहित किया जाता रहा है। अवैध शराब के धंधे करने वालों से भी सख्ती से निपटा जा रहा है।

आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा, यह प्रदेश मदिरा से होने वाली राजस्व आय की परवाह किए बिना मद्य निषेध कार्यक्रमों को आगे बढ़ाता रहा है। प्रदेश में मद्य निषेध की शुरुआत 2 अक्तूबर, 1967 को हुई जब पड़ोसी राज्य गुजरात की सीमा से 25 किलोमीटर इलाके में शराब की दुकानें हटा दी गईं। 1965-66 में राज्य को लगभग 7.80 करोड़ रुपयों की आमदनी इस मद के अन्तर्गत हुआ करती थी परन्तु सरकार की स्पष्ट नीति एवं समाज के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह करते हुए अप्रैल 1968 को राजस्थान में सर्व प्रथम डूंगरपुर, बांसवाड़ा, सिरोही तथा उदयपुर जिले की 3 तहसीलें—खेरवाड़ा, झाडौल व कोटड़ा में मद्य निषेध लागू कर दिया गया। ये सभी जिले आदिवासी बहुल के क्षेत्र थे तथा अनेक वर्षों से यहीं के निवासी मदिरा सेवन के दुष्परिणामों से प्रभावित थे। इन जिलों से उस समय लगभग 50 लाख रुपये का वार्षिक राजस्व मद्य पदार्थों के तहत प्राप्त होता था, परन्तु इस आय प्राप्ति के सिद्धान्त को त्याग लगभग 19 लाख की जनसंख्या के हितों का ध्यान रखते हुए मद्यनिषेध कार्यक्रम लागू कर दिया गया।

बीच-बीच में जन प्रतिनिधियों ने तत्कालीन सरकार के समक्ष शराबन्दी की आवश्यकताओं की ओर ध्यान दिलाया। अतः अप्रैल 1970 में जालौर, बाडमेर, जैसलमेर जिलों तथा उदयपुर जिले की धारियाबाद, सराड़ा व गोगुन्दा तहसीलों में भी शराब बन्दी के आदेश लागू कर दिए। 1971 की जन गणना के अनुसार इस बार भी लगभग 19 लाख की जनसंख्या को लाभान्वित किया गया।

इसी बीच 1968 व 1970 में जिन जिलों में मद्य-निषेध किया गया था, वहां पर सरकारी यन्त्र को सशक्त बनाया जाता रहा ताकि अवैध एवं असामाजिक कार्यवाहियों को नियन्त्रित किया जा सके। आबकारी विभाग ने उड़न दस्ते एवं विशेष सतर्कता दलों द्वारा समय-समय पर छापे मार कर अवैध शराब तथा भट्ठियां पकड़ीं।

पांच वर्षों की अवधि के बाद अप्रैल 1975 में लगभग 21.36 लाख की जनसंख्या, जो नागौर एवं चुरु जिलों में निवास करती थी—के लिए भी मदिरा निषेध आज्ञा जारी हो गई।

राष्ट्रपिता गांधी के स्पष्ट दिशा निर्देशों को कारगर तरीकों से लागू करने हेतु वर्तमान जनता सरकार पूरे प्रदेश में, विभिन्न चरणों में मद्य निषेध लागू करने हेतु अपनी रीति नीति स्पष्ट कर चुकी है। सरकार के समक्ष यह भी तथ्य स्पष्ट है कि 1972-73 में 9.50 करोड़ रुपये की इस मद विशेष की राजस्व आय 1976-77 में बढ़कर 22.90 करोड़ हो गई है। प्रदेश के सर्वांगीण विकास एवं जनोपयोगी योजनाओं को पूरा करने हेतु सरकार को सदैव अपने आय स्रोतों के साथ-साथ केन्द्रीय सरकार की ओर भी देखना पड़ा है। तामिलनाडु में 1948 से 1971 की अवधि में तथा तत्कालीन बम्बई क्षेत्र प्रदेश में 1948 से 1963 की अवधि में लागू मद्य निषेध के परिणाम के अनुभवों से भी प्रदेश सरकार के लिए एक चुनौती है। यह भी तथ्य है कि देश के 22 राज्यों में राजस्थान का मदिरा आवकारी की आय के संबंध में 11वां स्थान है।

भूतपूर्व सरकार की ढिल-मिल नीति तथा संविधान में किए गए इस संबंधी निर्देशक सिद्धान्तों की सर्वथा अवज्ञा की जाती रही जिसके कारण विगत् 27 वर्षों में प्रदेश में मद्य निषेध लागू नहीं हो सका। 1962 में केन्द्र-सरकार ने मद्य निषेध के कारण होने वाली आबकारी आय की क्षति-पूर्ति की योजना घोषित की थी। उसका भी लाभ नहीं उठाया गया। वर्तमान सरकार ने इन सभी मुद्दों पर गंभीरता से विचार किया है।

अपने आय स्त्रोतों की परवाह किए बिना सरकार, आम जनता, विशेष कर, कमजोर वर्गों के हितों को सर्वोपरि मानते हुए आगामी चार वर्षों में प्रदेश भर में मद्य निषेध लागू करने की पहल कर चुकी है। इस संबंध में केन्द्रीय मद्य निषेध परिषद् ने सारे देश मे अधिक से अधिक चार वर्षों में शराब बंदी करने की सीमा निश्चित की है। अतः राज्य सरकार ने 1 अक्तूबर, 1977 से पूर्व में घोषित मद्य-निषेध क्षेत्रों के अतिरिक्त टोंक, बूंदी जिलों, कोटा जिले की किशनगंज व शहबाद, चित्तौड़गढ़ जिले की प्रतापगढ़, भीलवाड़ा जिले की मांडल व जहाजपुर, उदयपुर जिले की सलुम्बर तथा पाली जिले की बाली तहसील में भी मद्य निषेध कार्यक्रम लागू कर दिया है। इन आदेशों के लागू होने से वर्तमान में डूंगरपुर, बांसवाड़ा, सिरोही, जालौर, बाड़मेर, जैसलमेर, नागौर चुरु, बूंदी व टोंक ऐसे 10 जिले हैं जो पूर्ण नशाबन्दी के अन्तर्गत आ गए हैं।

इसके साथ-साथ उदयपुर जिले की 7, कोटा व भीलवाड़ा की 2-2 तथा पाली व चित्तौड़गढ़ की एक-एक, अर्थात् कुल 13 तहसीलों में नशाबन्दी आदेश लागू हो गया

है । यह भी उल्लेखनीय है कि प्रदेश के सम्पूर्ण जन-जाति उपयोजना क्षेत्र में मद्य निषेध लागू कर दिया गया है, जो सरकार की आदिवासी एवं पिछड़े वर्ग के सर्वांगीण विकास के प्रति कृतसंकल्प भावना का परिचायक है ।

सरकार ने अपने संकल्प को पुनः व्यावहारिक रूप देने का फैसला किया है । उपरोक्त नशाबन्दी क्षेत्रों के अतिरिक्त 1 अप्रैल, 1978 से जोधपुर, बीकानेर तथा पाली जिलों में सम्पूर्ण मद्यनिषेध लागू किया जा रहा है । इस प्रकार अप्रैल 1978 से 13 जिलों एवं अन्य जिलों की 12 तहसीलों में पूर्ण नशाबन्दी लागू हो जाएगी ।

सरकार की ओर से वित्त मंत्री श्री आदित्येन्द्र ने एक विशेष प्रेस सम्मेलन में जानकारी दी कि इस कदम के प्रभावी होते ही राजस्थान के 63 प्रतिशत भाग में 40 प्रतिशत जन संख्या मद्य निषेध की परिधि में आ जाएगी । सरकार 7.72 करोड़ रुपये का घाटा समाज के हित में उठाएगी ।

मद्य निषेध कार्यक्रम को कड़ाई से लागू करने के उद्देश्य से, यदि दूसरे राज्य के जिले जहां मद्य निषेध लागू होता है तथा जिसकी सीमा राजस्थान से लगी है, तो प्रदेश के ऐसे सीमावर्ती क्षेत्र में दस किलो मीटर की दूरी पर शराब की कोई भी दूकान नहीं रखी जाएगी । इसके अतिरिक्त, राज्य की समूची सीमा से 55 किलो मीटर की दूरी के अन्दर भी कोई शराब की दूकान नहीं रखी जाएगी ।

मदिरा की दुकानों में कमी

पूर्ण नशाबन्दी लागू करने के अनुसरण में सरकार ने शराब की दुकानों में भी कमी करने का फैसला किया है । 1969-70 में प्रदेश में 38 दुकानें थीं परन्तु 1 अप्रैल, 1978 से देशी शराब की दुकानों की संख्या 994 रह जाएगी । अभी केवल राष्ट्रीय एवं धार्मिक महत्व के दिन ही सूखे दिवस घोषित किए गए हैं, जिनकी संख्या केवल 9 दिन है । परन्तु अब जनता के हितों का ध्यान रख कर सप्ताह में एक दिन तथा प्रत्येक माह के वेतन दिवस को शुष्क दिवस घोषित करने का निर्णय किया गया है ।

राज्य में नशाबन्दी के पक्ष में समुचित वातावरण बनाने के लिए अभी तक एक राज्य स्तरीय मद्य निषेध परामर्शदात्री समिति का गठन किया गया था । परन्तु अब इसके स्थान पर प्रमुख सर्वोदयी नेता श्री सिद्धराज ढड्ढा की अध्यक्षता में नशाबन्दी मण्डल का गठन किया गया है जिसमें मुख्य मंत्री व वित्त मंत्री के अतिरिक्त अन्य जाने-माने विशिष्ट व्यक्तियों का भी सहयोग लिया जाएगा । इस मण्डल द्वारा राज्य भर में अपनी शाखाएं गठित कर नशाबन्दी के विरुद्ध प्रबल व अनुकूल वातावरण तैयार किया जाएगा । ये समितियां सरकार की घोषित रीति-नीति के अनुसार नशाबन्दी कार्यक्रम को कारगर ढंग से लागू करने के उपाय भी सुझाएंगी ।

सरदार शहर की भारतीय संस्कार निर्माण समिति को गत दो वर्षों के दौरान 2.76 लाख की अनुदान राशि स्वीकार की गई थी । इस राशि का उपयोग इस संस्थान ने मद्य निषेध के लिए प्रचारात्मक साहित्य व अन्य सामग्री तैयार करने के निमित्त किया । समाज कल्याण विभाग के विभिन्न केन्द्र भी शराब की बुराइयों एवं इसके दुष्परिणामों के संबंध में, व्यापक प्रचार कर, अनुकूल जन-मानस तैयार करने में संलग्न है । चालू वर्ष के दौरान इन गतिविधियों को और तेज किया जा रहा है ।

विगत 10 वर्षों में यद्यपि नशाबन्दी कार्यक्रम राजस्थान में लागू है परन्तु वर्तमान सरकार ने अपने छोटे से कार्यकाल में ही 5 जिलों एवं 7 तहसीलों में मद्य निषेध कार्यक्रम लागू कर एक निश्चित एवं प्रभावकारी कदम उठाया है । इन कदमों से यह आशा प्रबल होती है कि आगामी 4 वर्षों में राजस्थान में पूर्ण नशाबन्दी लागू हो जाएगी । ●

सालन के वृक्ष

हम सब वृक्ष हैं
सालन के वृक्ष हैं
रक्त के वृक्ष हैं
अस्थियों के वृक्ष हैं

हम ऐसे वृक्ष हैं
जिनकी छटा और जड़ें
इतनी विषैली हैं
कि आसपास के वृक्ष
सांस नहीं ले सकते

हम वृक्षों को
मारने वाले वृक्ष हैं !!

मुकेश जीबोध

बच्चों में प्रोटीन कैलोरी कुपोषण

बटुकेश्वर दत्त सिंह "बटुक"

भारत वर्ष ही नहीं संसार के अधिकांश विकासशील राष्ट्रों में बालमृत्यु अधिक होने का एक प्रमुख कारण बच्चों में कुपोषण सम्बन्धी रोग है। कुपोषण का अर्थ होता है कि दैनिक आहार से शरीर के लिए आवश्यक विभिन्न पोषक तत्वों जैसे प्रोटीन, कार्बोज, बसा, खनिज लवण तथा विटामिन का उचित मात्रा एवं अनुपात में प्राप्त न होना। जिस किसी पोषक तत्व की कमी बराबर बनी रहे उसी के कुपोषण रोग से बच्चे प्रभावित हो जाते हैं। ऐसे बच्चों का स्वाभाविक रूप से शारीरिक एवं मानसिक विकास नहीं होता। कुपोषण रोगों से प्रभावित बच्चों को अन्य बीमारियों की छूत भी आसानी से लग जाती है, क्योंकि उनके शरीर पहले से ही क्षीण होते हैं। इस प्रकार अनेक अबोध बच्चे बड़े होने से पहले ही असमय मौत के मुंह में पहुंच जाते हैं।

अधिकांश शिशु जन्म लेने के उपरान्त तीन चार माह तक स्वाभाविक रूप से बढ़ते हैं क्योंकि उन्हें अपनी मां का प्राकृतिक दूध पीने को मिलता है। परन्तु चार महीनों के बाद उनकी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विभिन्न पोषक तत्व केवल मां के दूध से नहीं पूरे पड़ते। उन्हें मां के दूध के अतिरिक्त बाहरी भोजन की भी जरूरत पड़ती है जो उनके शरीर की समुचित बढ़वार कर सके, उन्हें काम करने की शक्ति दे सकें तथा उन्हें बाहरी व्याधियों से सुरक्षा प्रदान कर सके। लेकिन ऐसा पाया जाता है कि जब कोई शिशु एकाएक मां के दूध से वंचित होकर परिवार में प्रयोग होने वाले सामान्य आहार को अपनाने पर विवश हो तो उसकी पाचनक्रिया परिपक्व न होने के कारण तथा बाहरी गन्दगी एवं प्रदूषण वाले पानी एवं आहार का प्रयोग करने से दस्त तथा पेचिश का शिकार हो जाता है। ऊपर का आहार देने की गलत मान्यताओं तथा अनुपयुक्त तरीकों को अपनाने से भी बच्चे को दिया जाने वाला ऊपरी आहार उसके शरीर की पोंषण आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता। अपच, उल्टी, दस्त में दिये जाने वाले भोजन के प्रति बच्चे की अरुचि आदि के कारण शरीर वर्धक प्रोटीन की आवश्यकता पूर्ति ही नहीं, बल्कि शक्ति दायक कैलोरी सम्बन्धी आवश्यकताओं की भी समुचित पूर्ति नहीं हो पाती और तब ऐसे बच्चे प्रोटीन-कैलोरी कुपोषण से प्रभावित होते हैं।

भारतवर्ष में ऐसे दस करोड़ बच्चे हैं जिन्हें पर्याप्त चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाएं, समुचित आहार तथा शिक्षा आदि की व्यवस्थायें करनी हैं। इनमें से आधे बच्चे कुपोषण से किसी न किसी रूप में कुप्रभावित हैं। दुर्भाग्यवश प्रोटीन कैलोरी कुपोषण स्थिति को सर्वाधिक गम्भीर बनाए हुए है। ऐसे विकासशील देशों में गरीबी, बीमारियों, कुपोषण और अज्ञानता के कारण लोग अनेक दुःख पाते हैं परन्तु सबसे अधिक कुप्रभावित स्कूल जाने की आयु के पूर्व 1 से 5 वर्ष के बीच के बच्चे होते हैं। शैशव काल में शिशु की मां उसका पूरी तरह पालन-पोषण करने की जिम्मेदार होती है, स्कूल जाने पर अध्ययन की सुविधा के साथ बच्चे को स्वास्थ्य तथा पोषण की भी न्यूनाधिक सुरक्षा प्राप्त हो जाती है, बड़ा हो जाने पर वह स्वयं अपने कल्याण की यथासम्भव व्यवस्थाएं करता है, परन्तु स्कूल जाने के पहले एक वर्ष से ऊपर पांच वर्ष तक बच्चे सर्वाधिक उपेक्षित रहते हैं। अमृत तुल्य मां का दूध उन्हें मिलता नहीं, अधिकांश स्थितियों में उसका आगे आने वाला भाई या बहन उसका हिस्सा ही नहीं उससे उसकी मां का लगाव भी कम कर देता है। बच्चे को उसके शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक वृद्धि के अवसर पर परिवार में उपेक्षा मिलती है। ऊपर से अस्वच्छ वातावरण, दूषित पेय जल, पेचिश, दस्त, कुक्कुर खांसी, कृमि रोग आदि उसे और भी अधिक जर्जर बना देते हैं। बच्चे की पाचनशक्ति शिथिल हो जाती है, पतले दस्त तथा उल्टी होती है, ज्वर भी रहने लगता है और कृमियों की आवश्यकता पूर्ति भी उसे अपने ही आहार द्वारा करनी होती है। इस सबका प्रभाव उसके शारीरक तथा मानसिक विकास में रुकावट के रूप में प्रकट होता है।

बचपन का प्रोटीन-कैलोरी कुपोषण बच्चों में जो शारीरिक तथा मानसिक विकास अवरुद्ध करता है, उसकी क्षतिपूर्ति आगे कभी सम्भव नहीं होती। बच्चे नाटे कद के हो जाते हैं और उनमें स्कूल जाने की आयु के पहले ही मानसिक विकास की जड़ें खोखली हो चुकी होती हैं। पनपने के पूर्व ही अंकुर को मुरझाने का भय हो जाता है।

क्वाशियारकर रोग :

बच्चों के दैनिक आहार में निरन्तर प्रोटीन की कमी बनी रहने से उन्हें एक विशेष प्रकार का रोग हो जाता है, जिसे क्वाशियारकर (KWASHIORKOR) कहते हैं। इस रोग के लक्षण निम्नलिखित होते हैं।

1. बच्चे की शारीरिक बाढ़ रुक जाती है।
2. उसमें चिड़चिड़ापन आ जाता है तथा सुस्ती रहती है।

3. उसके पूरे शरीर पर सूजन आ जाती है, जिसमें अंगुली से दबाने पर गढ्ढा जैसा बन जाता है। जो दबाव हटा लिए जाने के बाद भी कुछ देर तक बना रहता है और धीरे-धीरे भरता है।

4. बच्चे का जिगर बढ़ जाता है।

5. उसे दस्त आते हैं।

6. शरीर में रक्त की कमी हो जाने से वह पीला पड़ जाता है।

7. उसके सिर के बाल सूखे, भूरे तथा चमकरहित हो जाते हैं।

8. बच्चे की त्वचा में सूखापन, फटना तथा उसकी रंगत में परिवर्तन हो जाते हैं।

9. बच्चे के गाल स्वाभाविक रूप से फूलकर नीचे की ओर लटक आते हैं।

10. उसे भोजन से अरुचि होने लगती है।

11. रोगनिरोधक शक्ति में कमी आ जाती है और ऐसे बच्चे के शरीर में अनेक रोगों की छूत बराबर लगती रहती है।

क्वाशियारकर रोग अधिकांशतया ऐसे बच्चों को हो जाता है जिन्हें अपनी मां का दूध जन्म के तुरन्त बाद या कुछ महीनों में ही छूट जाता है। अफ्रीका के कुछ देशों में तो परिवार में एक के बाद दूसरे बच्चे के जन्म होने पर पहले बच्चे को यह रोग होना एक स्वाभाविक बात मानी जाती है। इस धारणा के पीछे मुख्य कारण बच्चे के लिए सर्वोत्तम उसकी मां का दूध सुलभ न होना है। ऐसे बच्चे इस रोग के अधिक संवेदनशील होते हैं जिनके दैनिक आहार में पशुजनित प्रोटीन का नितान्त अभाव रहता है तथा वनस्पति जगत् से मिलने वाली सहज सुलभ दालों की प्रोटीन भी नहीं मिल पाती है।

शरीर को भोजन से जो ऊर्जा अर्थात् काम करने के लिए जो शक्ति प्राप्त होती है उसे कैलोरी में नापते हैं। एक ग्राम कार्बोहाइड्रेट व एक ग्राम प्रोटीन प्रत्येक से चार कैलोरी तथा एक ग्राम वसा से नौ कैलोरी ऊर्जा शरीर को प्राप्त होती है। छोटे बच्चों में उनके शरीर के लिए समस्त पोषक अंशों के साथ ऊर्जा-प्राप्ति का स्रोत भी मां का दूध ही होता है। मां का स्तन्यपान करके कोई भी बच्चा तीन चार माह की आयु तक ही अपने शरीर की पोषण आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाता है। इसके उपरान्त उसे ऊपर का आहार लेना नितान्त आवश्यक हो जाता है। यही वह समय होता है जब बच्चों में प्रोटीन कैलोरी कुपोषण के कारण मैरामस (MARAMUS) जैसा घातक रोग उन्हें ग्रसित कर लेता है जिसके प्रमुख कारणों में उपयुक्त खाद्य पदार्थों का अभाव, अज्ञानता तथा प्रदूषण होते हैं। बच्चे को ऊपरी आहार से उसके शरीर के लिए आवश्यक कैलोरी की पूर्ति नहीं हो पाती तो उसके शरीर के समस्त तन्तु, वसा, मांसपेशियां आदि का ऊर्जा उत्पादन में प्रयोग होने लगता है और वह सूख कर हड्डियों का ढाँचा मात्र रह जाता है। ऐसी अवस्था में बच्चों को भोजन में प्रदूषण तथा खाली पेट रहने के कारण दस्त आने लगते हैं जिसका प्रभाव उनके लिए और भी अधिक घातक सिद्ध होता है। दस्त आते हैं तो उसे खाने को आहार नहीं दिया जाता जिससे कैलोरी का अभाव और भी बढ़ जाता है। छोटे बच्चों की माताएं या तो पीने को पानी देती ही नहीं और यदि देती भी हैं तो बहुत कम जबकि दस्त आने की दशा में बच्चे के शरीर से पानी व्यर्थ निकल जाने से उसे अधिक पानी की आवश्यकता होती है। बच्चों को जो थोड़ा बहुत पानी अथवा दूध दिया भी जाता है वह दस्त तथा पेचिश के रोगाणुओं से दूषित रहता है।

1. बच्चे का शरीर इतना दुर्बल हो जाता है कि हड्डियों के ऊपर मांसपेशियों के स्थान पर केवल खाल रह जाती है।

2. त्वचा पतली तथा झुर्रियों वाली हो जाती है लेकिन क्वाशियारकर रोग की तरह फटती नहीं है।

3. बालों की स्वाभाविक चमक जाती रहती है तथा वे सूखे हो जाते हैं परन्तु उनका रंग नहीं बदलता।

4. बच्चा भोजन लेने से इन्कार नहीं करता परन्तु दस्तों की अधिकता से उस भोजन का उपयोग नहीं हो पाता।

5. बच्चे का जिगर बढ़ जाता है।

6. उसकी आंखें डरावनी तथा घूरती हुई जान पड़ती हैं।

7. कभी-कभी हाथ-पांव में कुछ अकड़न सी अनुभव होती है।

8. रक्त की कमी से शरीर पीला तथा कान्तिहीन हो जाता है।

9. रोग निरोधक शक्ति का ह्रास हो जाता है और बच्चे को अन्य रोगों की छूत आसानी से लग जाती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन का मत है कि भारत वर्ष जैसे विकासशील देशों में माताएं अपने बच्चों को तब तक दूध पिलाएं जब तक वे उसका उत्पादन कर सकती हों या कोई ऐसी स्थिति उत्पन्न न हो जाए जिसमें ऐसा करना मना हो क्योंकि बाहरी दूध की यदि व्यवस्था नहीं हो पाती तो थोड़ी मात्रा में ही सही बच्चे को मां का पौष्टिकता से भरपूर प्राकृतिक दूध उसके बढ़वार के सर्वाधिक महत्वपूर्ण समय में मिलता रहता है।

पांच माह का होने पर बच्चे को मां के दूध के अतिरिक्त अवश्य ही कुछ आहार दिया जाना चाहिए। यह धारणा कि जब तक बच्चा दूध पीता है उसे और कोई भोजन देने की आवश्यकता नहीं होती, सही नहीं है। बच्चों के पाचन संस्थान को अभ्यस्त बनाने के लिए भी ऊपर का आहार धीरे-धीरे लेना उचित होता है। बच्चों को पानी पिलाने पर भी विशेष ध्यान देना चाहिए। उन्हें दिन में दो या तीन बार अवश्य पानी दें। परन्तु ध्यान रहे कि दिया जाने वाला जल सुरक्षित हो। अच्छा होगा कि पेय जल को उबाल कर ठंडा कर लें और उसे बच्चों को पिलाएं। बच्चों को दिए जाने वाले गाय या भैंस के दूध में जो पानी मिलाएं वह उबाला हुआ हो।

बच्चों को यदि दस्त आएं तो उनका भोजन बन्द न करें। डाक्टर से परामर्श लेकर दवा कराएं। ऐसे भी देखा गया है

कि बच्चों के पेट में कम आहार होने की वजह से भी उन्हें दस्त आने लगते हैं।

शिशुओं को सर्वप्रथम तरल पेय पदार्थ देना प्रारम्भ करें और धीरे-धीरे अर्ध ठोस (लुग्दी) के रूप में भोजन दें। अवस्था बढ़ने के साथ बच्चों को अनाज और दालों का मिला-जुला भोजन देना चाहिए।

मां के दूध के समान ही अण्डे से मिलने वाली प्रोटीन की गणना की जाती है। बच्चों को तीसरे से पांचवें महीने के बीच अण्डे की जर्दी देना प्रारम्भ किया जा सकता है। अण्डे का सफेद भाग साल भर की आयु तक नहीं देना चाहिए, क्योंकि देखा गया है कि बच्चे इससे संवेदनशील होने के कारण उनके शरीर पर दाने पड़ जाते हैं।

बच्चों को चौथे माह से अनाज तथा दालें दी जा सकती हैं परन्तु इन्हें खूब पकाकर घोट लेना चाहिए जिससे वे तरल अथवा लुग्दी के रूप में हो जाएं। प्रारम्भ में चावल को खूब पकाकर मसल लें और दूध के साथ मिलाकर शिशु को दें। इसकी मात्रा दो बड़े चम्मच रक्खें। एक सप्ताह बाद चावल के साथ थोड़ी दाल मिलाकर पकाएं और नमक मिलाकर खिलाएं।

सातवें मास से बच्चों को आलू उबालकर तथा मसल कर दिया जा सकता है। खूब पका हुआ केला मसल कर बच्चे को खिलाएं।

पूरक आहार

बच्चे को मां के दूध से अलग करने के बाद ऊपर का दूध और अनाज देना सबसे अच्छा होगा। अनाज से कैलोरी सम्बन्धी आवश्यकता पूरी होगी तथा दूध से अच्छे किस्म की प्रोटीन व अन्य शरीर रक्षक पोषक तत्व प्राप्त होंगे। किन्तु दूध का अभाव होने तथा महंगा होने से अधिकांश लोग केवल अनाज ही अपने बच्चों को दे पाते हैं। ऐसी दशा में अच्छा यह होगा कि दूध न मिल सके तो उसके स्थान पर दालों को सुपाच्य बनाकर बच्चों को आवश्यकतानुसार उनके दैनिक आहार में दिया जाए। नीचे बच्चों के लिए उपयोगी तथा कम खर्चीले कुछ पूरक आहार दिए जा रहे हैं।

(1) बाजरे की खीर: सामग्री: बाजरा 50 ग्राम, दाल मसूर 50 ग्राम, तथा गुड़ 50 ग्राम।

विधि :—बाजरा और मसूर की दाल को भूनकर आटे के रूप में पीस लें। थोड़े जल में इस आटे को पकाएं। गुड़ का शर्बत बनाकर मिला दें। बाजरे की खीर बन जाएगी। दूध मिल सके तो उसके साथ खाएं। यह 6 से 12 माह तक के बच्चे के लिए उत्तम है।

2. मड़ुए (रागी) और बेसन की खीर :—सामग्री :—चने का आटा 50 ग्राम, मड़ुआ का आटा 50 ग्राम और गुड़ 50 ग्राम।

विधि :—रागी (मडुआ) के आटे को पानी में घोलकर उबालें और छान लें। उसके बाद चने के आटे (बेसन) में मिलाकर गुड़ के साथ मीठी खीर बना लें।

3. मूंगफली का हलवा :—सामग्री : गेहूं का आटा 50 ग्राम, मूंगफली की खली 25 ग्राम, गुड़ 50 ग्राम, वनस्पति तेल या घी 5 ग्राम।

विधि :—आटे और मूंगफली की खली को भून पीसकर मिला लें। इसे गुड़ के शर्बत में मिलाकर उबालें और चलाते रहें, ताकि ठीक से मिल जाए। इसके बाद गर्म घी या तेल डालकर उतार लें।

4. दाल चावल की हरी टिकिया :—सामग्री :—चने की दाल 50 ग्राम, उरद की दाल 25 ग्राम, सेला चावल 40 ग्राम, चौलाई का साग 50 ग्राम, तेल 5 ग्राम, नमक स्वादानुसार।

विधि :—चने व उरद की दालों को अलग अलग भिगोकर पीस लें। फिर मिलाकर, नमक डालकर खमीर उठने के लिए रात भर रख देवें। सबेरे चौलाई के छोटे-छोटे टुकड़े काटकर मिलाएं और फेंट डालें। फिर उसकी छोटी-छोटी मनचाहे आकार की टिकियां बनाकर भाप में पकाएं। ऊपर से तेल की छौंक लगाएं।

5. मीठे मिस्सी पराठे :—सामग्री :—मड़ुए (रागी) का आटा 45 ग्राम, गेहूं का आटा 20 ग्राम, गुड़ 25 ग्राम, अरहर की दाल 25 ग्राम, तेल 5 ग्राम।

विधि :—अरहर की दाल को भूनकर पाउडर बना लें, फिर मड़ुए तथा गेहूं के आटे के साथ मिलाकर गुड़ के शर्बत से गूंथ लें। इसकी रोटियां, परांठे या पूड़ियां बना लें।

6. नमकीन तहरी :—सामग्री :—सेला चावल 60 ग्राम, गाजर 30 ग्राम, सेम 20 ग्राम, लौकी 25 ग्राम, अरहर 30 ग्राम, तेल 2 ग्राम, नमक स्वादानुसार।

विधि :—दाल को थोड़ा पहले पकने दें। उसके बाद गाजर, सेम तथा लौकी को छोटी-छोटी काटकर चावल के साथ पक रही दाल में मिलाकर पकने दें। नमक डालें तथा पकने पर तेल की छौंक दें। खूब घुटी हुई तहरी बनावें।

7. मूंग और चूड़े का मीठा पेय :—सामग्री : चावल का चूड़ा 30 ग्राम, मूंग की दाल 30 ग्राम, गुड़ 30 ग्राम।

विधि :—चूड़ा और दाल को भूनें तथा पीस लें। गुड़ के शर्बत में मिलाकर आग पर 10 मिनट तक पकाएं तथा पकाते समय चलाते रहें जब तक गाढ़ा पेय न तैयार हो जाए।

बच्चों की कैलोरी तथा प्रोटीन सम्बन्धी आवश्यकताएं उनके शरीर भार के अनुसार प्रौढ़ों की अपेक्षा पर्याप्त अधिक होती हैं, क्योंकि बच्चों को उनके शारीरिक तथा मानसिक विकास के साथ उनकी अधिक क्रियाशीलता के लिए पौष्टिक आहार मिलना परमावश्यक होता है। एक स्कूल जाने की आयु से पूर्व का बच्चा अपने माता या पिता के लिए आवश्यक दैनिक आहार का आधा आहार प्रति दिन चाहता है। जब वह 10 से 12 वर्ष के बीच की आयु में पहुंच जाता है तो उसकी कैलोरी तथा प्रोटीन की आवश्यकताएं एक प्रौढ़ व्यक्ति के बराबर हो जाती हैं।

बटुकेश्वर दत्त सिंह "बटुक"
प्रसार प्रशिक्षण अधिकारी,
प्रसार प्रशिक्षण केन्द्र,
बख्शी का तालाब,
लखनऊ।

कहानी

छोटे आदमी : बड़ी बातें

—श्रीराम शर्मा 'राम'

कदाचित यह विश्वास देर से चला आया है कि मनुष्य का भाग्य जब फलता है, तो देर नहीं लगती। किन्तु जब फूटता है, तो तब भी, आंधी के झोंकों की तरह सभी कुछ उड़ा कर ले जाता है। फलस्वरूप, सेठ चन्दूलाल के भाग्य के विषय में भी इसी प्रकार की किम्वदन्ती प्रचलित थी। लोगों का मत था कि उस व्यक्ति के पास कुछ समय पूर्व ठीक से खाने-पीने का भी सुभीता नहीं था। बाप-दादा को अभाव में ही जीवन बिताना पड़ा। लेकिन चन्दूलाल एक ऐसा लड़का पैदा हुआ कि जिसने अपने पुरखों का नाम भी रोशन कर दिया। 'चन्दू' चन्दूलाल बन गया। फिर 'सेठ' भी उसके नाम के साथ लग गया। वह समाज में प्रतिष्ठित, सम्पन्न नागरिक समझा जाने लगा।

और जैसा कि व्यक्ति का आम स्वभाव है, जब पैसा आता है, तो उसके साथ दम्भ और प्रदर्शन का भाव भी मनुष्य में जागता है। मानो पैसे का यही महत्व है। अतएव, लोगों की यह धारणा कि दुर्बल के लिए धरती पर कोई स्थान नहीं, उसका सम्मान नहीं, सेठ चन्दूलाल ने स्वयं इसे सिद्ध करके बताया। लेकिन उसी समाज में कुछ ऐसे भी व्यक्ति थे कि केवल "भाग्य" के सहारे वह जीवन की परम्परा को नहीं छोड़ सकते थे। अतएव वे समझना चाहते कि जब यह पैसा है, तो इसके आने का कोई रास्ता भी है, जाने का भी है। फलस्वरूप, सेठ चन्दूलाल के पास वह पैसा कैसे और किस प्रकार आया, यह जैसे जिज्ञासा का विषय था। इसलिए कुछ का मत था कि सेठ चन्दूलाल का श्वसुर कन्जूस था, उसके पास पैसा था, मरते समय वह सभी पैसा चन्दूलाल को प्राप्त हो गया। उसने उसी पैसे से कारबार बढ़ाया।

जी, हां, यह सर्वविदित था कि सेठ चन्दूलाल की अनेक मिलें और कारखाने थे। वह सभी प्रकार के कारबार में बैठता। अनाज से लेकर सोने-चांदी के कारबार में उसका प्रवेश था। जब पास में पैसा था, तो सेठ का नगर की अनेक संस्थाओं से भी सम्बन्ध था। फलस्वरूप, वह किसी संस्था का सभापति था, किसी कम्पनी का मैनेजिंग डायरेक्टर। जनता-जनार्दन की सेवा करना भी, सेठ चन्दूलाल के लिए अप्रिय विषय नहीं था। यह सर्वत्र प्रचलित था।

सेठ चन्दूलाल की पत्नी मिजाज की चिड़चिड़ी और स्वभाव की अनुदार थी। फलस्वरूप पति-पत्नी में अनबन रहती। परन्तु देर तक प्रतीक्षा करने के बाद, जब वह नामी पुत्र की मां बनी, तो सेठ चन्दूलाल के लिए वह सर्वोत्तम प्रतिभावान नारी थी। सेठ का यह भी विश्वास बना कि उसके पास जो कुछ था, वह भी पत्नी के भाग्य से आया। इसलिए वह भाग्य की देवी उसके लिए सर्वगुण सम्पन्न और हृदयेश्वरी थी।

पत्नी का नाम राधा था। वह स्वयं भी नौकरों को प्रायः सुना देती, यहां जो कुछ है, मेरे भाग्य से आया है।

फलस्वरूप, राधा के मन में भरे दम्भ का परिणाम यह हुआ कि आए दिन वह किसी न किसी नौकर को फटकार देती, नौकरी से निकाल देती। चूंकि वह मिजाज की क्रोधी थी, इसलिए वे घरू नौकर या तो सेठानी का रोष बर्दाश्त करते, अन्यथा नौकरी से हाथ धो बैठते।

राधा के मन की अवस्था के समान, सेठ भी इस विषय में पीछे नहीं था। उसका क्रोध बाहर के आदमियों पर उतरता। यह सर्व विदित था कि सेठ मगरूर है और आत्म-प्रवंचक। अतएव, कारखाने के मैनेजरों आदि को आए दिन सेठ के कोप का भाजन बनना पड़ता। काम बढ़ा तो व्यस्तता भी बढ़ गयी। सेठ को कभी बम्बई-कलकत्ते के भाव जानने होते थे, तो कभी किसी व्यापारी से बात करनी होती थी। इस प्रकार सेठ का पल-पल विधा था। किन्तु उस व्यस्तता में भी यदि राधा बच्चे को गोद में लिए उनके पास आती और कहती—"देखो, यह मुन्नू रो रहा है। मुझ पर नहीं रहता। तुम्हारी ओर देख रहा है, तो तब, सेठ सभी कुछ भूलकर अपने उस मुन्नू की सीमा में समा जाता।

लेकिन यदि बच्चा रो रहा है, वह ही-ही हू-हू कर रहा है, सेठ के संभाले भी नहीं संभलता; तो तभी, यदि भाग्य का मारा कोई नौकर उधर पहुंच गया, तो सेठ उसी को लक्ष्य करके कहता—"क्यों बे, मुनुवा रो रहा है और तुम्हें पता भी नहीं। ऐसे नवाबजादे हो। लो, इसे। गाड़ी में बैठाओ और बाहर ले जाओ।"

इतना सुन, राधा तुरन्त कहती—"अजी, ये सब कामचोर हैं। आंख चुराते हैं। दस बार बुलाऊं, तो कहीं सुनते हैं। इन्हें तो मुफ्त की तनख्वाह चाहिए।"

तब सेठ कहता—"राधा, यह जमाना ही ऐसा है। लोग मुफ्त में पैसा चाहते हैं, काम करके नहीं।"

और बच्चा है, जैसे शैतान की आंत, न नौकर पर रहता, न हंसता। न बोलता, केवल रोना। जैसे उसके भाग्य में रोना ही लिखा था। यद्यपि नौकर हैं, नौकरानियां हैं, परन्तु वह बच्चा दो वर्ष का होकर भी न बैठ पाता है, न किसी से हिल-मिल पाता है। अनेक साधन पाकर भी कमजोर—जैसे छः महीने का शिशु। कभी भूल से घर की नौकरानी पार्वती अपना बच्चा वहां ले आती, तो राधा उसे देखते ही, जैसे अपने-आप में कुढ़ जाती। जल-भुन जाती। अपने बच्चे से उसकी तुलना करती, तो पाती, सेर और छटांक का अन्तर है। उसका बच्चा नौकरानी के बच्चे के समक्ष पासंग भी नहीं था। कितना सुंदर, सलोना और खिलाने लायक था वह बच्चा। वह नौकरानी का बच्चा।

फलस्वरूप, राधा के मन में वेदना और कसक उठती। वह उसे लील जाना चाहती। एक दिन जब उसने अवसर पाया, तो संस्कारवश बने विचारों के अनुरूप, पार्वती के बच्चे के सिर से कुछ बाल काट लिए और जो ताबीज राधा के बच्चे के गले में पड़ा था, उसी में रख दिए गए।

किन्तु उह पार्वती ने अपने बच्चे के बाल कटे देखे, तो वह सहम गई, कातर भी बन गई। उसने तुरन्त राधा से कहा—"मालकिन मेरे बच्चे के किसी ने बाल काट लिए।"

सुनते ही राधा चिढ़ गई—"तो मैं रखवाली करती हूं, तेरे बच्चे की। क्यों लाती है, यहां। मत लाया कर। इतने तो आदमी हैं, किस-किस की खोज खबर लूं।"

सहमी हुई पार्वती ने बात सुनी, तो चुप रह गई। किन्तु जब वह अपने काम से निबट कर घर लौट गई, तो राधा के पास आकर दूसरी नौकरानी बोली—"पार्वती कहती थी, जिसने ऐसा किया, उसके सामने आएगा। उसका नाश होगा।

राधा ने बात सुनी, तो उपेक्षा के साथ टाल दी।

किन्तु पार्वती की यह विवशता थी कि जब उस घर में काम करने आती, तो बच्चा किस पर छोड़े। कभी पति घर होता, कभी नहीं। अगले दिन जब वह फिर बच्चे के साथ आई, तो उसे एक जगह बैठाकर काम में लग गई। बच्चा सरकता हुआ वहां पहुंच गया कि जहां राधा कीच पर पड़ी थी। बरबस ही, उसकी बच्चे पर निगाह पड़ी। देखा कि बच्चा उसकी ओर बढ़ रहा है। हंस रहा है। वह सब राधा को अच्छा लग रहा है। वह उसे गोद में उठा ले, यह भी मन में आ रहा है। किन्तु ऐसा करना भी उसके स्वभाव में नहीं था। अतएव, जब वह बालक रेंगता हुआ उसके पास आ गया, उसके पैर भी पकड़ कर खड़ा होने लगा, तो तभी राधा ने पैर से झटका दिया। बच्चा गिर गया। वह रो पड़ा। चीख उठा।

तभी राधा चिल्लायी—"अरी पार्वती!"

पार्वती दौड़ कर आयी। वह बच्चे को गोद में लेकर पुचकारने लगी। वह समझ गई कि बच्चा झिड़का गया है, गिरा है। तभी उसने कहा—"मालकिन, यह तो बच्चा है! नादान है।"

किन्तु मालकिन ने उपेक्षा से कहा—"तो मैं क्या करूं सिर पर बैठा लूं। कह दिया न, यहां मत लाया कर।"

पार्वती रोष में भर गई। बोली—"मुझे कहिए, बच्चे को कुछ न कहिए।" और यह कहते ही, वह तेजी के साथ उस स्थान से हट गई। वह उस मकान से ही निकल गई। वह अन्य नौकरों को सुना गई—"मैं नहीं आऊंगी, इस घर पर। थूकने भी नहीं।"

और यही बात एक नौकर ने राधा को जाकर बता दी।

संयोग की बात थी, एक दिन अन्य नौकरानी सेठानी के बच्चे को गाड़ी में डाले पार्क में गई। वहीं पार्वती मिल गई। वह उसे देखते ही बोली—"पार्वती, एक बात कहूं, तुझसे। तेरे बच्चे के बाल सेठानी ने काटे थे, किसी और ने नहीं। विश्वास न हो तो, देख ले, ताबीज। इसी में रखे हैं।"

पार्वती ने हाथ बढ़ाया, और से ठके लड़के का ताबीज देखा। सचमुच ही, उसमें बाल रखे थे। जब वह सीधी सेठ के घर पहुंच गई और सेठानी के कमरे के सामने जाकर बोली—"शर्म नहीं आई, मेरे बच्चे के बाल काटते हुए। कहे देती हूं, इस का फल भी बुरा होगा।" और वह सेठानी का बिना उत्तर पाए, तीर की तरह उस घर से लौट गई।"

उसी रात सेठ के पुत्र की तबीयत खराब हो गई। उसे बुखार चढ़ा और दो-तीन दिन बाद वह टाईफाइड में परिणत हो गया। यह बात एक दिन पार्वती के कानों में भी पहुंच गई। जिसने बात कही, वह औरत हंस कर बोली—"यही होता है, इन बड़े घरों में।" लड़के के लिए सेठ भी परेशान है और सेठानी भी। और कुछ सुना तूने, सेठ पर कई मुकदमे चले हैं, गबन के, चोरबाजारी के, मुझे तो लगता है, सब खेल ही खत्म होना चाहता है।" वह बात कह कर खिलखिला पड़ी और लौट गई।

रात को जब पार्वती का पति घर में आया, तो उसके चारपाई पर पड़ते ही पार्वती ने कहा—"क्यों जी, कुछ तुमने भी सुना, सेठ पर मुकदमे चले हैं। लड़का बीमार है।"

पति ने लापरवाही से कहा—"वह बेईमानों की दुनिया में रहता है, पार्वती। उससे हमारा लगाव क्या। समता भी क्या। परन्तु चोर, डाकू और खूनी से कम नहीं।"

किन्तु पार्वती ने तब भी कहा—"सुबह जाना, देख आना।" उसके मन में कुछ अटका था। स्वतः ही उदास बना था।

सुनकर पति हंस दिया—"मैं उसकी बराबरी का हूं, ना, जो घर में पहुंच जाऊंगा पगली कहीं की।" वह बोला—"उस दिन तू स्वयं काम छोड़ आई। अब भूल गई अपनी बात कि सेठानी मगरूर है, तेरे बच्चे को मिट्टी का ढेला समझती है। तब लानत भेज ऐसे लोगों पर।" "उनकी दुनिया और है, हमारी और।

इतनी बात सुनी तो पार्वती चुप रह गयी। मानो वह असहाय और विवश थी।

पति का नाम हरचन्दा था। वह कुछ ठहर कर बोला—"पार्वती, यह माया तो धूप-छांह की तरह आती-जाती है। देखना, अब यह सेठ भी जेल की हवा खाएगा। सभी कुछ खो देगा।"

पार्वती बोली—"मुझे उसकी दौलत जाने की फिकर नहीं, बच्चे की फिकर है।" और इतना कहते ही, स्वतः अपने-आप में खो गई। उसके समक्ष बात थी कि वह सेठानी को बद्दुआ दे आई थी। वह बात उसे लील जाना चाहती। बार-बार कंपाती। वह कांटे की तरह उसकी छाती में चुभ रही थी।

तभी वह पति से बोली—"अपने लल्ला की तरह सेठानी का बच्चा भी मैंने गोद खिलाया था। मैंने भी उसे अपने दिल की ममता और प्यार दिया था।

उपेक्षा भाव से हरचन्दा हंस दिया—"तू बड़ी ममतामयी है, पार्वती।" और बरबस ही अपनी उन्माद भरी आंखों से उसकी ओर झुक गई। वह पार्वती की गरम सांसों पर टिक गया। दोनों जवान, दोनो स्वस्थ, दोनों ही एक-दूसरे में खोए हुए...सेठ और सेठानी का दाम्पत्य-जीवन उसके समक्ष क्या था। केवल नगण्य। वह उस प्रकरण को भुला देने को तत्पर था।

सुबह हुआ और हरचन्दा अपने काम पर चला गया। तभी पड़ोस की एक स्त्री ने उसके पास आकर कहा—"अरी, पार्वती, तूने भी सुना, वह तेरा सेठ दस साल की सजा पा गया। उस पर कई लाख का जुर्माना हो गया, कल ही वह जमानत पर छूटा है। उसका लड़का बीमार है। सुनती हूं, उसकी हालत खराब है।

इतना सुनना था कि पार्वती ने अपने बच्चे को पड़ोसिन को सौंप दिया। जब वह उस घर पहुंची, तो सीधी उस कमरे में गई, जहां लड़का बीमार पड़ा था। वहां डाक्टर था, सेठ था, सेठानी थी। अन्य कई व्यक्ति थे। उसी समय डाक्टर ने कहा—"बच्चे को खून चढ़ेगा।" किन्तु प्रश्न था, खून कौन दे। शुद्ध और स्वस्थ खून।

डाक्टर ने सेठ और सेठानी के खून को पसन्द नहीं किया। उसी समय पार्वती ने जाकर कहा--"डाक्टर साहब, मेरा खून लो।"

डाक्टर ने देखा कि औरत स्वस्थ है, जवान है।" वह बोला--"हां, तुम्हारा खून लिया जा सकेगा।"

बरबस सेठ के मुंह से निकला--"अरी तू पारो"

पार्वती ने कहा--"सेठ जी, मुसीबत सब पर आती है। आपका मनवा मैंने भी खिलाया है। वह मेरा भी है। मैंने उसे अपने मन का प्यार दिया है।"

"हाँ, हा, तेरा भी अधिकार है पारो।"

तभी डाक्टर ने पारो के शरीर से एक ट्यूब खून ले लिया। वह बच्चे के शरीर में चढ़ा दिया गया। जब डाक्टर गया, तो सभी चले गए। किन्तु सेट को यह अच्छा नहीं लगा कि पारो भी लौट गई। वह राधा से बोला--"छोटी औरत थी, परन्तु बड़ा काम कर गई। हमें ऋणी बना गई।"

राधा ने बात सुनी तो चुप रह गई। वह बोल नहीं पाई। उसे लगा कि जैसे अपने पाप का वह स्वयं ही प्रायिश्चित करने लग गई। इस पाप को फलता-फूलता देखने लगी। मन की उस विषम अवस्था में ही वह कांप गई। बरबस उस की आंखें भी भर आई।

दो-चार दिन में लड़का रोग की भीषणता से बाहर निकल आया। तभी कुछ ब्राह्मणों को भोजन कराया गया। उसी समय सेट ने राधा से कहा, "पारो नहीं आई? वह नहीं बुलाई?"

राधा ने कहा--"वह नहीं आएगी।"

सेठ ने कहा--"उसे आना चाहिए था। तुम्हें बुलाना था। उसने हमारे बच्चे को खून दिया। उसे कुछ तो देना था।"

राधा ने कहा--"मैंने उसके पास बीस रुपये भेजे थे और खाना, वह सब उसने लौटा दिया।"

इतना सुन सेठ अवाक् रह गया। वह बोला--"उसको रुपये नहीं भेजने थे। यह तो उसका अपमान था। शायद पारो के अनुरूप नहीं। उसने जो कुछ हमें दिखाया और सिखाया, वह अभूतपूर्व था। पारो सरीखी औरत से मैं ऐसे व्यवहार की कल्पना भी नहीं कर सकता था।"

संयोग की बात कि तभी पार्वती वहां, आ पहुंची। देखते ही सेठ ने कहा --"अरी पारो। आ गई तू। आ बैठ।"

पारो ने कहा--एक बात कहनी है, सेठ जी।"

सेठ ने कहा--"हां, हां. क्या बात है।"

"आप द्वार पर देखिए। सेठानी जी आप भी।"

"क्या है री, पार्वती? राधा ने उत्सुक भाव में पूछा। वे दोनों छज्जे पर गए। देख कर चकित रह गए कि सड़क पर पड़ी झूंठी पत्तलों पर समाज के कंगाल बच्चे चिपट रहे थे।"

यह देख, बरबस, राधा के मुंह से निकला --"राम। राम।"

पार्वती ने कहा--"सेठानी जी, खिलाने का पुण्य इनको था, ब्राह्मणों को नहीं।" वह बोली --"देखती हैं, आप, सभी बच्चों की हड्डियां निकली हैं। पेट कमर में लगे हैं। इन्सान कितना दुःखी है, भूख से पीड़ित है, ये बच्चे उसी के नमूने हैं।"

किन्तु उस समय सेठ मौन था। वह देख रहा था कुछ स्त्रियां भी गोद में बच्चे लिए उस जूठन के ढेर से कुछ पा रही थीं। और समेट रही थीं। वे नंगे, वे कृश, वे दीन बने हुए बच्चे, मानो समाज के साकार रूप थे।

तभी देखा कि पार्वती वहां नहीं थी। वह सड़क पर पहुंच चुकी थी। अपने घर की ओर जा रही थी। सेठ को लगा कि वह पार्वती जाने कितनी महान और कितनी अपूर्व थी। जाति की छोटी और मन की बड़ी।

और दूसरे दिन सेठ फिर जेल पहुंच गया। मुकद्मे के फैसले के विरुद्ध अपील चल रही थी, परन्तु उसकी जमानत की अवधि पूर्ण हो चुकी थी।●

श्याम नगर,
लिसाड़ी गेट,
मेरठ-2

[सम्पादकीय आवरण पृष्ठ 2 का शेषांश]

गरीबी, बीमारी, व बेरोजगारी का बोलबाला है। कुछ लोग अनाप-सनाप धन के मालिक बन बैठे हैं तो अधिकतर को दो जून रोटी भी मयस्सर नहीं। रोजी-रोटी की तलाश में शहरों की ओर लोगों का पलायन जारी है। कैसी बिडम्बना है कि शिक्षा पर राष्ट्र का अन्धाधुन्ध पैसा खर्च हो रहा है परन्तु गांवों में निरक्षरता बढ़ती ही जा रही है। विकास योजनाएं चालू हैं पर दुःख दैन्य बढ़ता चला जा रहा है।

क्यों? जब हम अपने गांवों के इस दुःख-दैन्य के कारणों की खोज करते हैं तो पाते हैं कि जिन प्राचीन मूल्यों पर हमारे सुन्दर समाज का भवन खड़ा हुआ था उन मूल्यों का ह्रास ही हमारे पतनोन्मुख जीवन का कारण है। जीवन में भौतिकता को प्रधानता देने से धन-लोलुपता बढ़ती है और फिर भ्रष्टाचार पनपता है। जब किसी समाज में भ्रष्टाचार का घुन लग जाता है तो उस समाज का ढांचा चरमरा कर टूट जाता है। आज यही हालत हमारे समाज की भी है और अब जरूरत इस बात की है कि भौतिकता और नैतिकता में सामंजस्य पैदा किया जाए और अपने सामाजिक जीवन में नए-पुराने स्वस्थता प्रदान करने वाले मूल्यों की स्थापना की जाए। इसके लिए हमें रामायण और महाभारत जैसे ग्रन्थों की विषय वस्तु से अपने को पुनः सम्पृक्त करना होगा।

बसन्त ऋतु और शरीर का संशोधन

वैद्य रघुनन्दन प्रसाद साहू

यूं तो प्रत्येक ऋतुओं की अपनी-अपनी विशेषता होती है परन्तु बसन्त की कुछ और ही विशिष्टता होती है। अतः पुरातन काल से ही उसे ऋतु-राज बसन्त कह कर हमारे शास्त्रों में इसका वर्णन मिलता है। प्रकृति इस समय जैसे नये परिधान में दिखाई देती है। जिधर नजर डालिए सभी जगह प्रकृति की सुषमा की निराली छटा दिखाई पड़ती है। सभी पेड़ पौधों का पुराना पन झड़कर गिर जाता है और नए-नए पुष्पों से पेड़-पौधे भरे दिखाई देते हैं जिसकी छटा बड़ी ही मनमोहक होती है।

जिस प्रकार प्रकृति अपने पुराने पन को त्यागकर उसे गिराकर नए ताजे फल पुष्पों को उत्पन्न कर अपने आपको संवारती है उसी प्रकार यदि मनुष्य बसन्त ऋतु में अपने शरीर के दोषों को संशोधन की विधि से स्वच्छ कर ले तो उसका शरीर पुनः विकारों अर्थात् रोगों से मुक्त होकर स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर सकता है। चूंकि इस ऋतु में सूर्य की किरणों में क्रमशः गर्मी बढ़ती जाती है, अतः यह शरीर के शरद् ऋतु जन्य संचित दोषों को क्रमशः द्रवित करती हुई उसे अपने स्थान से विचलित कर देती है। अतः प्रकृति अपने आप इस ऋतु में मनुष्य को दोषों के संशोधन के लिए उपयुक्त अवसर प्रदान करती है। अतः मनुष्यों को चाहिए कि इस ऋतु के द्वितीय मास अर्थात् चैत्र के महीने में अपने शरीर के प्रकुपित दोष अर्थात् कफ का विधिपूर्वक संशोधन करें। क्योंकि शरद ऋतु में संचित दोषों का अगर सम्यक् संशोधन न कर दिया जाए तो संचित दोष एकत्रित होकर अनेक रोग पैदा कर देते हैं। अतः लोगों का चैत्र के मास में कफ दोष के संशोधन की प्रक्रिया वमन का युक्तिपूर्वक प्रयोग करना चाहिए।

वमन के द्वारा कफ दोष को निकालने के लिये निम्नलिखित साधारण योगों को प्रयोग में लाया जा सकता है। यथा :

1. मदनफल के चूर्ण को एक पल की मात्रा में, आपमार्ग, आक या नीम के चार गुने क्वाथ में मधु और सेंधानमक डालकर यथोचित मात्रा में पीकर वमन करके अपने दोष का निर्हरण कर सकते हैं।

2. इसी प्रकार मदनफल के चूर्ण को चार गुणे वकुल, महानिम्ब के क्वाथ में मधु और सेंधानमक मिलाकर गरम करके पीने से कफ दोष का संशोधन कर सकते हैं।

3. मदनफल के कच्चे फल के चूर्ण से सिद्ध की हुई तिल और चावलों की यवागु को पीकर भी वमन करके दोष का निर्हरण कर सकते हैं।

4. मदन फल को तोड़कर उसके बीज को निकालकर उसकी भी गिरी निकालें। इसकी गिरी को दूध में उबाल करके वमन के लिये पिया जाता है।

5. या मदनफल की गिरी को दूध में उबालें और उस दूध की मलाई को चाटें इससे भी वमन होकर कफ दोष का निर्हरण हो जाता है।

6. देवदाली के सूखे पुष्पों के चूर्ण को आपामार्ग, आक या नीम के क्वाथ में मधु और सेंधानमक डालकर वमन के लिये प्रयोग कर सकते हैं।

7. पीले फूल की कड़वी तोरी की गिरी को भी दूध में उबाल कर वमन के लिये प्रयोग करते हैं। उपरोक्त औषधियों का प्रयोग किसी योग्य वैद्य की देख-रेख में करना उचित है क्योंकि दोषों का सम्यक् विधि से निर्हरण स्वास्थ्य प्रदान करता है और सम्यक् विधि नहीं होने पर रोगों को उत्पन्न करता है। अतः इनका सम्यक् विधि से प्रयोग करना चाहिए।

बसन्त ऋतु का भयंकर रोग : खसरा

डा. वी. पी. मिश्र

बसन्त के आने पर अनेक बीमारियां शुरू हो जाती हैं जिनमें खसरा एक भयंकर रोग है और जो अधिकतर बच्चों को ही होता है परन्तु कभी-कभी बड़े लोगों पर भी इसका प्रकोप हो जाता है।

लक्षण :

पहले ज्वर होता है। आंख, नाक से पानी चलना आरम्भ हो जाता है। मुंह और आंखें चढ़ी हुई एवं लाल दिखाई पड़ती हैं। बेचैनी रहती है। दो-तीन दिन

[शेषांश पृष्ठ 34 पर]

कुरुक्षेत्र के बारे में पाठिका की राय

कुरुक्षेत्र का जनवरी, 1979 अंक मिला। पढ़ने बैठी तो पूरी पत्रिका समाप्त किए बिना नहीं रहा गया। कारण, सर्वप्रथम इस अंक में संपादकीय लेख—'बच्चे ही हमारे बगीचे की फुलवाड़ी' बहुत अच्छा लगा। इस लेख में बच्चों के स्वास्थ्य की चर्चा करते हुए यह भी बताया गया कि किस प्रकार से छोटी उम्र में ही बच्चों को रोजी-रोटी कमाने के लिए उनके अभिभावक उन्हें बाध्य करते हैं। यह गलत प्रथा है और सरकार को सख्त कदम उठा कर इस प्रकार की कुप्रथा को रोकने के लिए आवश्यक कदम उठाने चाहिएं।

इस अंक में पहाड़ी और आदिवासी क्षेत्रों का विकास, समस्याओं से जूझता खेतिहर मजदूर, तथा गांवों में आवास निर्माण की गति धीमी क्यों? आदि महत्वपूर्ण एवं उपयोगी लेखों से पत्रिका, ग्रामीण जनजीवन की आकांक्षाओं को प्रस्तुत करने में सफल हुई है। 'सरस्वती का पूजन' नामक कहानी में समाज के उत्थान के लिए एक नया कदम प्रस्तुत किया गया है। इस में निर्धन और धनवान की खाई को पाटने की राह दिखाई गई है। इसके साथ ही 'पहला सुख निरोगी काया' के अन्तर्गत केले की महत्ता और उसके गुणों के बारे में बताया गया है।

वास्तव में कुरुक्षेत्र ग्रामीण जीवन को दर्शाने वाली, एक अनोखी, निराली और अद्वितीय पत्रिका है क्योंकि भारत मूलतः गांवों का देश है और इस पत्रिका में इसका सजीव दर्शन मिलता है। उचित मूल्य के होते हुए, इसमें अच्छी कहानी, रूपक, कविताएं एवं ग्रामीण जनजीवन को दर्शाने के लिए सम्पादक मण्डल बधाई के पात्र हैं।

अंत में एक निवेदन जरूर करना चाहती हूं: यदि इस पत्रिका में अन्य स्तम्भों जैसे, पहला सुख निरोगी काया, पाठकों की राय के साथ यदि—'महिला जगत्' स्तम्भ भी प्रकाशित किया जाए तो इससे यह पत्रिका और भी महत्वपूर्ण हो जाएगी। अंत में मैं सम्पादक मण्डल को इस अंक के लिए शुभ कामनाएं प्रेषित करती हूं।

श्रीमती कृष्णा देवी
बी-1/155, न्यू मोती नगर,
नई दिल्ली-110015

धन्य रुनकता ग्राम, धन्य सीही-परसौली

काव्य जगत् के सूर्य, सूर कविकुल चूड़ामण।
विमल लोक भाषा के गायक, भक्त-शिरोमणि॥
देश-काल की परिधि लांघ तव कीर्ति सुधाकर।
जन-मानस को प्लावित करता रस बरसा कर॥
छिन्न-भिन्न हो जब समाज अति दिशाहीन था।
बैर-फूट से ग्रस्त, क्षुब्ध, गौरवविहीन था॥
तब तुमने श्रीवल्लभ की गुरु आज्ञा पाकर।
भक्तिभावमय मधुर कृष्णलीला को गाकर॥
अंधकारमय जन-मानस में ज्योति जगाई।
मार्गहीन, ढुलमुल समाज को दिशा दिखाई॥
थे यद्यपि तुम अंध किन्तु थे दिव्य दृष्टिमय।
किया शुष्क मानव-उर-मरुथल सरस वृष्टिमय॥
बरसा रस वात्सल्य, करुण, शृंगार निरन्तर।
रसप्लावित कर रहे आज भी जग का अन्तर॥
धन्य रुनकता ग्राम, धन्य सीही-परसौली।
ग्रंथि जहां पर अमर काव्य की तुमने खोली॥

सूर्य दत्त दुबे
30 हौजरानी, नई दिल्ली-17।

बसन्त ऋतु भयंकर रोग..... [पृष्ठ 33 का शेषांश]

ज्वर रहने के बाद शरीर पर घमौरी जैसे छोटे-छोटे लाल रंग के दाने मुंह पर दिखाई पड़ते हैं। धीरे-धीरे ये दाने सारे शरीर पर फैल जाते हैं। ज्वर चलता रहता है फिर कुछ दिनों बाद ज्वर कम हो जाता है और दाने मुरझाने लगते हैं और सूखकर भूसे जैसी चीज़ चमड़ी में उभरने लगती है। कभी-कभी तीव्र वेग हो जाने पर खूनी पेचिश अथवा पसली चलने की बीमारी (न्यूमोनिया) बच्चों को हो जाती है।

उपचार :

आर्सेनिक एल्ब : 6-30: बेचैनी बहुत अधिक, थोड़ी-थोड़ी देर में घूंट-घूंट पानी की प्यास, रात को कष्ट अधिक, खांसी आधी रात के बाद अधिक होती है।

एकोनाइट नेप—6-30: आरम्भ की अवस्था में बुखार, बेचैनी, सिर दर्द, आंख, नाक से पानी बहता है। चार घंटे के अन्तर से देना चाहिए।

ब्रायोनिया एल्बा : सिर में दर्द, दबाने से आराम, प्यास अधिक, आधा गिलास एक गिलास पानी देर-देर बाद दें। बदन में दर्द, बेचैनी नहीं के बराबर। कालीम्यूर 6 और फेरम फौस 6 प्रथमावस्था से ही इन दोनों दवाओं को मिलाकर देने से कष्ट अधिक नहीं बढ़ने पाता। दाने अच्छी तरह निकल आते हैं। चार घंटे के अंतर से दें।

यूफ्रेसिया : 6-30: आखों से पानी का आना, आंख में जलन का होना इसका विशेष लक्षण है। चार-चार घंटे के अन्तर से देते रहें।

पल्साटिला : 300-200: खसरे के दौरान प्यास का बिलकुल न होना। विशेष कर खांसी के लिए अति उत्तम औषधि है।

लेकेसिस-200 : खसरा के बाद कभी-कभी सूखी खांसी रह जाती है। इस दवा की एक खुराक देने से खांसी ठीक हो जाती है।*

वी. पी. मिश्र
डी-770, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली-1

हिमालय के खानाबदोश

लेखक : डा० श्यामसिंह शशि, प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृष्ठ संख्या : 103, मूल्य : सात रुपये।

आलोच्य पुस्तक के पृष्ठों को पलटते ही ऐसा आभास लगता है जैसे कोई दूसरा राहुल सांकृत्यायन फिर धरती पर उतर आया हो और अब उसकी यायावर कलम 'वोल्गा से गंगा' तक चलने के बाद हिमालय के खानाबदोशों में रम गई है। वास्तव में इस पुस्तक के लेखक को यदि हम आज का राहुल सांकृत्यायन भी कहें तो इसमें कोई अतिशयोक्ति न होगी। लेखक महानगरों के विलास भरे सुख को त्याग कर पहाड़ों की खड़ी चढ़ाई पार करने में आनन्द का अनुभव प्राप्त करता है और घुमन्तू जीवन बिताने वाले आदिवासियों के बीच कष्ट उठाता है। वह यायावरों के साथ महीनों पैदल अनुसन्धान यात्राएं करता है, बियावान घाटियों में उन्हीं के साथ रात बिताता है।

घार के कच्चे पहाड़ की चढ़ाई उसके 'औक्खाँ पहाड़ा रा जीणा' के काव्यमय चित्रण में साकार दिखाई पड़ती है।

लेखक ने इस पुस्तक में मुख्यत: हिमालय के खानाबदोश समाजों का नृ-वैज्ञानिक अध्ययन पर आधारित रोचक शैली में चित्रण किया है जो वैज्ञानिक विषय की तरह शुष्क नहीं है बल्कि सुघड़, सलौनी और प्रांजल शैली में पाठक को सहयात्री की भांति उन अछूते क्षेत्रों में ले जाता है जहां भारत का सबसे अधिक पिछड़ा, अशिक्षित व निर्धन समाज निवास करता है। भैंस पालने वाले गूज्जर, भेड़-बकरी पालने वाले गद्दी और भारी बोझ उठाने वाले भोटिया जैसे यायावर अथवा अर्द्ध यायावर लोग डा० शशि की लेखनी के विषय बने हैं। वह उनके सामाजिक ढांचे, रीति-रिवाज, वेशभूषा, धर्म तथा जादू आदि का जहां अधुनातम शोध-प्रणाली के अनुरूप समाज शास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत करता है वहां उनके लोक साहित्य का सरस शैली में आख्यान प्रस्तुत करता है। "चंचलो और कूंजूआ की लोक-गाथा तो हिमाचल प्रदेश के कण-कण में व्याप्त है। लेखक क्योंकि स्वयं कवि भी है इसलिए आदिवासी गाथाओं का कवितामय अनुवाद कर साहित्य की भी श्रीवृद्धि करता है। वस्तुत: देखा जाए तो यह पुस्तक नृ-विज्ञान की प्रामाणिक-यात्रा वृतान्त की रोचकता और उपन्यास की सरसता लिए हुए है। पुस्तक के उत्पादन पक्ष पर दृष्टि डालने से ऐसा लगता है कि चित्रों और मुख्यत: आवरण पृष्ठ के आकर्षण पर कम ध्यान दिया गया है, साथ ही लोकगीतों में भी कहीं-कहीं प्रूफ की अशुद्धियां अखरती हैं। मूल्य भी कुछ अधिक है, किन्तु यह कृति समाज-विज्ञान के साथ-साथ हिन्दी साहित्य में भी अपना अनन्य स्थान प्राप्त करेगी इसमें कोई सन्देह नहीं।

—शशि चावला

कबीर एक विश्लेषण : प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001, पृष्ठ 232, मूल्य 11 रु० 50 पैसे।

कबीर प्राकट्य दिवस (ज्येष्ठ पूर्णिमा) के अवसर पर प्रकाशन विभाग की विनम्र श्रद्धांजलि के रूप में प्रकाशित यह लघु ग्रंथ प्रभृति विद्वानों का हिन्दी साहित्य के भक्ति कालीन निर्गुण काव्यधारा के प्रमुख सन्त कवि कबीर पर विभिन्न निबंधों के माध्यम से कवि के व्यक्तित्व और कृतित्व तथा उनकी भागवत और शिल्पगत उपलब्धियों को उजागर करने हेतु एक सामूहिक सफल एवं श्लाघनीय प्रयास है। पुस्तक के प्रारम्भ में प्राक्कथन के लेखक ने पुस्तक की सामग्री की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की है। पुस्तक में गणमान्य लेखकों ने अनेक युक्ति संगत उद्धरणों द्वारा कबीर काव्य के सामाजिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक एवं कवि की आत्माभिव्यक्ति तथा आत्म दर्शन के द्योतक तथ्यों को साधिकारिक रूप से विवेचित-विश्लेषित किया है। कबीर की शिल्पगत विशिष्टता संबंधी लेखों में डा० गुलाबराय तथा डा० रमेश चन्द्र मिश्र ने काव्य में प्रयुक्त भाषा एवं भावगत सौंदर्य की विस्तार से चर्चा की है। इसके अतिरिक्त अन्यथा अप्राप्य डा० ओमप्रकाश सक्सेना द्वारा लिखित "गुजरात में प्राप्त कबीर वाणी का पाठ" लेख ग्रंथ के कबीर संबंधी शोध-पूर्ण अध्ययन को पूर्णता प्रदान करता है। कबीर के व्यक्तित्व को प्रकट करने हेतु प्रथक मुद्राओं में उनके जीवन्त चित्र, चरणपादुकाएं, कबीर मंदिर, कबीर चौरा एवं कबीरपंथ में महत्व-पूर्ण त्रिशूल और माला तथा उनके कुछ हस्तलिखित अंशों के दुर्लभ चित्र अनेक माध्यमों से संकलित कर पुस्तक के मध्य में उपयुक्त स्थलों पर प्रदर्शित किए गए हैं तथा परिशिष्ट में कबीर विषयक अध्ययन में सहायक विभिन्न हस्तलिखित ग्रंथों एवं स्रोतों का पूर्ण परिचय दिया गया है जिससे इस ग्रंथ का महत्व और भी बढ़ गया है। संकलन की इतनी वैविध्यपूर्ण संभावनाओं के बावजूद कबीर के प्रथम आधिकारिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व-पूर्ण विद्वान आचार्य प्रवर डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के बहुमूल्य लेख का अभाव ग्रंथ में सर्वत्र खटकता है। इसमें संदेह नहीं कि एक आलोचनात्मक विश्लेषण के रूप में यह सुसंकलित ग्रंथ साधारण मूल्य पर सामान्य पाठकों एवं शोधार्थियों को कबीर विषयक उत्कृष्ट सामग्री सुरुचिपूर्ण किन्तु विविध शैलियों में प्रदान करने में पूर्णतया समर्थ है।

साज-सज्जा की दृष्टि से भी पुस्तक आकर्षक मुद्रण सहित अपना एक निजी स्थान रखती है।

हनुमान "प्रसाद शर्मा"
2023 गली बर्फ वाली, किनारी बाजार,
चांदनी चौक, दिल्ली।

नीले आकाश के लिए : लेखक : नित्यानन्द : प्रकाशक : सामयिक प्रकाशन, 3543, जटवाड़ा, नई दिल्ली-110002, पृष्ठ संख्या : 110, मूल्य : आठ रुपए पचास पैसे ।

यह कथाकार नित्यानन्द का पहला उपन्यास है, पर पहला जैसा लगता नहीं । इसके शिल्प, कथासंयोजन में परिपक्वता है और इसमें आज के जीवन की विकटता का चित्रांकन सूक्ष्मता एवं गहराई के साथ हुआ है । शायद इसका यह कारण रहा हो कि नित्यानन्द ने अपने कथालेखन की शुरुआत कहानी से की और एक कहानी-संग्रह प्रकाशित भी हो चुका है । इसमें अलग अलग ढंग के पात्र हैं जो अपनी अपनी समस्याएं, कमजोरियां और विशेषताएं लिए हुए हैं । उनके लिए जीवन बड़ा मुश्किल है, संघर्षपूर्ण है, पर वे बड़े मजबूर हैं । कथाकार ने आर्थिक समस्याओं से जकड़े हुए पात्रों को यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत किया है जहां क्षण-प्रतिक्षण की कचोट है । यह आर्थिक जकड़ और मजबूत हो सके, इसके लिए बीच-बीच में संपन्नता के कुछ संदर्भ हैं और अर्थपीड़ित पात्रों की स्वप्निल महत्वाकांक्षाएं हैं ।

कथाकार ने पात्रों के चित्रण में मनोवैज्ञानिक आधार को अपनाया है । वह उनके अंदर उतरा है, उनके बाहर , उनके साथ बैठा है और तब उन्हें उनके अंदर बाहर से खोला है । इस प्रकार यह पता चल सका है कि वे अंदर बाहर से किस हद तक एक हैं और किस हद तक अलग अलग हैं । बाहरी स्थितियों के बीच किस प्रकार पात्र खुलते जाते हैं, यह कथाकार नित्यानन्द के कथा-कौशल का परिचायक है ।

इस उपन्यास में बाबू वर्ग की मानसिकता की अभिव्यक्ति मिलती है । बाबुओं की आर्थिक स्थिति बहुत खराब है, वे तंगी में जीते हैं, उनके बच्चे बेहतर जिंदगी के लिए तरसते हैं पर उनके पास कोई विकल्प नहीं है । इसमें एक ओर वे लोग हैं जो आर्थिक जकड़न में हैं तो दूसरी ओर ऐसे भी बाबू हैं जो नेता टाइप हैं और अपने ही वर्ग के लोगों को लूटने खसोटते रहते हैं । दरअसल आज का जमाना ऐसे ही चलते पुर्जे लोगों का है जो अपनी तिकड़मों के बल पर ऐश करते हैं । एक ओर हरिन्दर का परिवार है तो दूसरी ओर फिरकी बाबू हैं । फिरकी बाबू, बाबू कालोनी के कल्याण के लिए एक क्लब चलाते हैं जिसे अपनी तिकड़मों से अपने हाथ में रखे हुए हैं । उससे अपने लिए रुपए उड़ाते हैं और प्रचार एवं प्रतिष्ठा पाते हैं । उन्होंने माया जैसे विवेकी लोगों को भी अपने काबू में रख छोड़ा है । दूसरी ओर हरिन्दर जैसे पात्र नीले आकाश के लिए तरसते रहते हैं, पर उन्हें मिला तपता आसमान, तपती भूमि और बंद व अंधेरा क्वार्टर ।

'नीले आकाश के लिए' लघु उपन्यास की भाषा बड़ी हल्की-फुल्की है । छोटे छोटे वाक्य, आम बोलचाल के शब्द, लेकिन बड़ी व्यंजकता और सहजता लिए हुए है । वैसे उपन्यास के लघु कलेवर में न पात्रों का पूरा ही विकास हो सका है और न कथा को विशदता देने के लिए अधिक स्थितियों का चित्रांकन ही हो सका है । इसमें चित्रित पात्रों में विकास की काफी संभावनाएं थीं । मैं नित्यानन्द से एक सशक्त उपन्यास की अपेक्षा करता हूं ।

रत्न लाल शर्मा,
38/7, शक्ति नगर,
नई दिल्ली-110007

हरियाणा की लोककथाएं : लेखक— देवीशंकर अवस्थी, प्रकाशक राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली, मूल्य : 5.00 रु०, पृष्ठ संख्या : 391 ।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक श्री देवीशंकर अवस्थी ने हरियाणा की लोककथाओं का सचित्र वर्णन किया है । सर्वप्रथम सूरज नारायण नामक लोककथा में सूरज नारायण राजा ने सफाई से न रहने, समय पर काम न करने के कारण अपनी माता और पत्नी से रुष्ट रहता है । इस तरह इस कथा में सफाई की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है ।

टपका नामक लोककथा में यह बताया गया है कि किस प्रकार एक कुम्हार अपने खोए हुए गधे की खोज में शेर को पकड़ कर उसे पीटा और उसकी सवारी करी । इस लोककथा में वर्षा की एक बूंद जिसे टपका भी कहते हैं, से कुम्हार कितना डरता है कि वह शेर की भी परवाह नहीं करता ।

इस तरह इस पुस्तक में सभी लोककथाएं बड़ी उपदेशप्रद हैं ।

पुस्तक का आवरण पृष्ठ बहुत अच्छा बन पड़ा है । चित्रों से पुस्तक की साजसज्जा में चार चांद लग गए हैं । छपाई-सफाई उत्तम है । प्रूफ की अशुद्धियां भी नगण्य हैं ।

—मोहन लाल ककड़

उन्नत कृषि और घरनी : प्रकाशक : विस्तार निदेशालय, कृषि भवन, मूल्य : प्रति अंक 30 पैसा, पृष्ठ संख्या 29 ।

उक्त दोनों पत्रिकाएं ग्रामीण विकास, वृक्षारोपण, पशुपालन तथा पशुओं के स्वास्थ्य, उत्तम विधि से परिवार संचालन, स्वादिष्ट एवं संतुलित भोजन, बाल संरक्षण तथा घरेलू उद्योग सम्बन्धी अनेक प्रकार की सूचनाएं प्रदान करती है । साथ ही किसानों तथा गृहणियों के लिए प्रेरणा भी प्रदान करती है । कुछ बातें होती हैं कि हम उन्हें जानते तो है ही पर उन पर अमल नहीं करते । लेकिन जब वही बातें किसी अन्य के मुख से सुन लेते हैं और अपने दैनिक जीवन में उनको उतारने की कोशिश करते हैं और अपने में कुछ नई बातें भी हैं जिनको सीखकर किसान अपनी कृषि को उन्नत तथा पशुवंश का सुधार कर सकता है और गृहणियां अपने परिवार को सुखी और बच्चों को नीरोगी बना सकती हैं ।

उन्नत कृषि में भूमि संरक्षण, वृक्षारोपण, स्वस्थ फलों का उत्पादन तथा फलों द्वारा आय में वृद्धि तथा पशुओं को बांझपन, आदि रोगों से बचाने के अनेक तरीकों के बारे में बड़ी उपयोगी सूचनाएं एवं जानकारी दी गई है ।

घरनी जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, घरेलू जीवन को स्वस्थ तथा सुखी बनाने के बारे में जानकारी देती है । पारिवारिक जीवन को सुखी बनाने के लिए गृहिणी को कुछ सावधानियां बरतनी पड़ती हैं । मिसाल के तौर पर घर की सफाई साफ-सुथरे ढंग से भोजन पकाना, बच्चे को ठीक आहार और उसको बीमारियों से दूर रखना, आदि-आदि । यदि ये बातें हो जाएं तो घर स्वर्ग बन जाता है, वरना नरक बना रहता है । इस पत्रिका में हैजे से बचने के उपायों, खाने की वस्तुओं को सड़ने-गलने से बचाने, भोजन सही ढंग से पकाने तथा शिशुओं को संतुलित आहार वगैरह के बारे में जिन बातों की चर्चा की गई है वे है तो आम, पर बहुत कम गृहणियां ऐसी होंगी जो इन पर अमल करती होंगी ।

—विशाल त्रिपाठी

पहला
जल्दी
नहीं

दूसरा
अभी
नहीं

माता पिता
के लिए
नेक सलाह

तीसरा
कभी
नहीं

अपने पास के परिवार नियोजन केन्द्र,
प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र या ग्राम स्वास्थ्य सहायक
से सलाह और सामान लीजिए
आज ही उनके पास जाइए

davp

Regd. No. D(D)/98

हमारे किसान अब काफी बदल चुके हैं और कृषि के प्रति उनमें एक नई चेतना पैदा हो गई है। जहां एक ओर वे कृषि की नई तकनीकों और नए आदनों से खेती की पैदावार बढ़ाने में लगे हैं वहां दूसरी ओर एक साथ एक ही खेत से दो-दो फसलें लेकर देश को खाद्यान्न की दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाने में लगे हैं। उपर्युक्त चित्र में मूंग और गन्ने की मिली फसलों को दिखाया गया है।

गेहूं की शानदार फसल

निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और
प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, फरीदाबाद द्वारा मुद्रित।